ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 22 मार्च 2026 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार, 22 मार्च 2026 से 28 मार्च 2026

वैशाख शु. 5-6 ● वि० सं०-2082 ● वर्ष 67, अंक 12, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 202 ● सृष्टि-संवत् 1,96,08,53,126 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रु. ● वार्षिक शु. 300/- रु.

श्री सुरेन्द्र कुमार जी आर्य सर्वसम्मति से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान निर्वाचित

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अंतरंग सभा की एक बैठक 12 मार्च 2026 की आर्यसमाज हनुमान रोड के सभागार में आयोजित की गई। इस बैठक में श्री सुरेंद्र कुमार आर्य जी को सर्वसम्मति से सभा का प्रधान निर्वाचित किया गया।

सभी प्रांतीय सभाओं के अधिकारियों ने श्री सुरेश चंद्र आर्य जी की प्रशंसा करते हुए श्रद्धासुमन अर्पित किये। पिछले तीन वर्षों में हुए विभिन्न ऐतिहासिक आयोजनों की प्रशंसा की गई।

आर्य प्रतिनिधि सभा मुंबई के प्रधान श्री हरीश आर्य जी ने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पद के लिए श्री सुरेन्द्र कुमार आर्य जी का नाम प्रस्तावित किया, गुजरात प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री वाचोनिधि आर्य जी ने अनुमोदन किया। उपस्थित सभी प्रांतीय सभाओं के प्रधान, मंत्री, प्रतिनिधियों ने हाथ उठाकर ओम ध्वनि के साथ अपनी सहमति प्रदान की।

नव निर्वाचित प्रधान श्री सुरेन्द्र कुमार आर्य जी ने उपस्थित प्रांतीय सभाओं के अधिकारियों का आभार व्यक्त किया और आर्य समाज के सेवा कार्यों को निरंतर गतिशील रखने और आगे बढ़ाने की बात कही। प्रांतीय सभाओं के अधिकारियों ने श्री सुरेन्द्र कुमार आर्य जी को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं प्रदान कीं।

दसूहा में दीक्षान्त समारोह

जे.सी.डी.ए.वी. कॉलेज, दसूहा में 52वीं वार्षिक कन्वोकेशन तथा 55वाँ पारितोषिक वितरण समारोह आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में डी.ए.वी. कॉलेजों के नैशनल कॉर्डिनेटर डॉ अनूप कुमार वत्स मुख्य अतिथि के रूप में तथा डी.ए.वी. कॉलेज अमृतसर के प्रिंसिपल डॉ. अमरदीप गुप्ता विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित हुए।

स्नातकोत्तर उपाधियाँ प्रदान की गईं। 150 छात्रों को पारितोषिक वितरित किये गये।

डॉ. अनूप कुमार वत्स ने स्नातकों को शुभकामनाएँ दी तथा देश की उन्नति में योगदान देने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा दीक्षांत समारोह का अर्थ पढ़ाई का समाप्त होना नहीं, बल्कि असल पढ़ाई डिग्री मिलने के उपरांत शुरू होती है।

प्रिंसिपल राकेश कुमार महाजन ने मुख्य अतिथि तथा विशेष अतिथि का स्वागत किया तथा कॉलेज की वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत की। गत वर्ष में कॉलेज द्वारा प्राप्त गौरवपूर्ण प्राप्तियों का उल्लेख किया।

625 विद्यार्थियों को स्नातक और डॉ. अमरदीप गुप्ता ने छात्रों को समाज को सशक्त बनाने की प्रेरणा दी। पूर्व छात्र कुंवरदीप सिंह को युपीएससी परीक्षा में सफलता पर सम्मानित किया गया। अंत में कॉलेज स्टाफ सेक्रेटरी डॉ अमित शर्मा द्वारा आए हुए अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

डी.ए.वी. सै.-14, फरीदाबाद के छात्र आर्यसमाज (अनारकली) में पहुँचे

आर्य समाज मंदिर (अनारकली) में मधुर भजनों का एक प्रेरणादायक कार्यक्रम आयोजित किया गया।

कार्यक्रम में डी.ए.वी. सेक्टर–14, फरीदाबाद के विद्यार्थियों द्वारा मधुर भजनों प्रस्तुति दी गई। मधुर प्रस्तुति ने कार्यक्रम को आनंदमय और आकर्षक बना दिया।

हिंदी अध्यापिका श्रीमती पिंकी भारद्वाज ने अपने प्रेरणादायक प्रवचन द्वारा "हिंदी नववर्ष और पाश्चात्य नववर्ष" का अंतर स्पष्ट किया। उनके विचारों से उपस्थित जनसमूह को भारतीय संस्कृति के प्रति जागरूक होने की प्रेरणा मिली।

कार्यक्रम में उपस्थित गणमान्य अतिथियों और अधिकारियों ने भी विद्यार्थियों की प्रस्तुतियों की सराहना की।

अंततः यह कार्यक्रम अत्यंत सफल और प्रेरणादायक सिद्ध हुआ, जिसने नववर्ष के आरंभ को भक्ति, संस्कृति और सकारात्मक ऊर्जा से परिपूर्ण कर दिया।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक - पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 22 मार्च 2026 से 28 मार्च 2026

हिरण्य-धारण

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम्।
इद् हिरण्यं वर्चस्वज्, जैत्रायाविशतादु माम्।।

यजु ३४.५०

ऋषिः **दक्षः**। देवता **हिरण्यं तेजः** छन्दः **भुरिग् उष्णिक्।**

● (**आयुष्यं**) आयु के लिए हितकर, (**वर्चस्यं**) ब्रह्मवर्चस को प्राप्त कराने वाला, (**रायस्पोषं**) ऐश्वर्य का पोषक (**औद्भिदं**) (शत्रुओं, विघ्न–बाधाओं एवं दुःखों को) उद्भिन्न कर देने वाला (**इदं**) यह (**वर्चस्वत्**) आत्म–कान्ति से युक्त (**हिरण्यं**) हिरण्मय तेज (**जैत्राय**) विजय के लिए (**मां**) मुझमें (**आविशतात् उ**) प्रविष्ट होवे।

● संसार के युद्ध–क्षेत्र में शत्रुओं, विघ्न–बाधाओं और दुःखों से संघर्ष करते हुए मुझे विजय प्राप्त करनी है। यदि मैंने विजय का उपाय न किया तो शत्रु मुझे निगल जायेंगे, बाधाएँ एक पग भी आगे न बढ़ने देंगी, दुःख निरन्तर कचोटते रहेंगे। इन सब पर विजय पाने के लिए आवश्यक है कि मैं 'हिरण्य' धारण करूँ। 'हिरण्य' सुवर्ण का नाम है। सुवर्ण तेजस्वी होता है, अतः ज्योति या तेज को भी 'हिरण्य' कहते हैं। मैं अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा में 'ज्योति' को धारण करूँगा। शरीर को स्वस्थ, सबल, तेजस्वी बनाऊँगा। मन को शिव संकल्पवाला, अडिग, तेजोमय बनाऊँगा।

बुद्धि को त्वरित गति से सही निश्चय पर पहुँचनेवाली, शक्तिशालिनी, भास्वती बनाऊँगा। आत्मा को बलवान, विवेकशील, ज्योतिष्मान् एवं वर्चस्वी बनाऊँगा। अब तक मैं व्यथे ही सुवर्ण के आभूषण बनवाकर अंगुली, कलाई, कान आदि शरीर के किसी अंग में पहनकर यह मानता था कि मैंने 'हिरण्य' धारण कर लिया। पर आज मुझे ज्ञात हो गया है कि असली हिरण्य तो ज्योति या तेज है, जिसे अंग–अंग में धारण कर लने से मनुष्य अत्यन्त शक्तिशाली हो जाता है। शरीर के एक बहुमूल्य तत्त्व 'वीर्य' को भी शास्त्रकारों ने 'हिरण्य' कहा है। इस 'वीर्य' या 'रेतस्' को अनावश्यक रूप से प्रस्खलित न कर शरीर में धारण कर लेना 'उर्ध्वरेताः' बन जाना ज्योति या तेज की प्राप्ति का एक सफल उपाय है। यह ज्योति, तेज और वीर्य रूप हिरण्य का धारण दीर्घ एवं उत्तम आयु को देनेवाला है, ब्रह्मवर्चस को प्राप्त करनेवाला है, भौतिक तथा आध्यात्मिक ऐश्वर्य की पुष्टि को देनेवाला है। यह 'औद्भिद' है, बीज का अंकुर जैसे भूमि की परत को फाड़कर ऊपर आ जाता है, वैसे ही यह सब प्रकार की भौतिक और मानसिक को, विविध दुःखों और पीड़ाओं को एवं बाह्य और आन्तरिक रिपुओं को उद्भिन्न करके उत्कर्ष की ओर ले जानेवाला है। यह 'हिरण्य' मेरे अन्दर प्रवेश करे, प्रचुरता और तीव्रता के साथ प्रवेश करे।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु-भक्ति

● **महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती**

स्वामी जी 'प्रभु भक्ति' पुस्तक के माध्यम से हमें योगदर्शन के द्वारा ईशभक्ति की सफल राह पर आरूढ़ होना समझा रहे है। ईश्वर भक्ति में हमारा मन नहीं लगता तो क्यों ? क्योंकि मन हमारे वश में नहीं है। मन को नियन्त्रित करना है शुभ संकल्पों से, स्थूल और सूक्ष्म वृत्ति से। मन के विकारों को शुभ संकल्पों से धो डालें, बुरे विचारों को ज्ञान, संस्कार व दृढ़ इच्छा शक्ति से दूर भगा दें। महापुरुषों का सत्संग करें। जैसी संगति में रहेंगे वैसे ही हमारे संस्कार बनेंगे अतः महापुरुषों के साथ समय व्यतीत करें, उनके विचार सुनें, उन पर आचरण करें। स्वाध्याय के द्वारा अपने जीवन को साधना है। वेद पढ़ना व उनका प्रचार करना ऋषियों के प्रिय कर्म है। ओ३म् आदि पवित्र नामों का जाप मन को एकाग्र करता है, निर्मल करता है, शुभ संकल्प भरता है। अतः हम वेद व ऋषि वाणी को पढ़ें, उन शिक्षाओं को जीवन में अपनाएँ, मन को एकाग्र करें और मानव जीवन को सफल बनाएँ।

.... **अब आगे**

पाँचवाँ साधन–भगवद्–अर्थ कर्म

मन की निर्मलता के लिए पाँचवाँ साधन 'प्रभु के निमित्त काम करना' है। एक बार महात्मा हंसराज जी ने मुझे बताया कि जब उन्होंने जीवनभर बिना वेतन लिये दयानन्द कॉलेज में काम करने के सम्बन्ध में आर्यसमाज लाहौर के प्रधान को पत्र लिखा तो उनके मन में एक अद्भुत ज्योति चमत्कृत हुई। वह इस ज्योति को कितनी ही देर देखते रहे। तब उन्होंने अनुभव किया कि उनके मन की शक्ति कितनी बढ़ गई है और वह अपने अन्दर कितना अवर्णनीय आनन्द अनुभव करते हैं।

निस्सन्देह, प्रभु निमित्त काम करने से मन की निर्मलता बढ़ती है, मानसिक संकोच नष्ट होता है, क्षुद्रता जाती रहती है, विशालता का विस्तार होता है। जब कोई मनुष्य परोपकार–निमित्त इस भावना से अपने–आप को अर्पण करता है कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ, भगवान् के निमित्त कर रहा हूँ, अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं तो मन मोद, प्रमोद और आनन्द की तरंगों से तरंगित हो उठता है। जब किसी दीन, दुःखी और रोगी को, जिससे कोई सांसारिक सम्बन्ध न हो, आराम पहुँचाया जाता है, भूखे को खाना दिया जाता है, प्यासे की प्यास बुझाई जाती है तो उस समय वह कार्य करनेवाला अपने–आपको कुछ ऊपर उठा हुआ अनुभव करता है। यदि इसके साथ यह भावना भी हो कि 'मैं क्या हूँ ! यह सब काम करनेवाला भगवान् है, यह उसी की कृपा है और यह काम उसी के समर्पण है' तो मन की निर्मलता बहुत अधिक बढ़ जाती है। इसी भावना को निष्काम कर्म कहा जाता है। ऐसे कर्म उसे लिप्त नहीं करते। वह कमल–पत्र की भाँति संसार के जल में रहकर सारे कार्य करता हुआ भी कर्मरूपी जल से अलिप्त रहता है। यदि कोई यह प्रतिज्ञा कर ले कि वह जो करेगा भगवान् के अर्पण करता रहेगा तो फिर उससे कोई भी बुरा काम नहीं हो सकता। साधारण–से–साधारण व्यक्ति को भी जब वस्तु भेंट करनी होती है, तो अच्छी–से–अच्छी वस्तु प्राप्त की जाती है। जब माता–पिता, गुरु, इष्टदेव की भेंट के लिए सर्वोत्तम पदार्थों की खोज की जाती है, तब अपने भगवान् की भेंट के लिए तो अति–उत्तम, अति–प्रिय, और अति–उपयोगी वस्तु ही चाहिए। इसलिए जब वह कोई कर्म करने लगेगा तो पहले वह सोचेगा, क्या वह भगवान् की भेंट के योग्य है ? योग्य नहीं होगी तो उसे तत्काल छोड़ देगा। तब क्या वह झूठ बोल सकेगा ? चोरी अथवा कोई और निन्दनीय काम कर सकेगा? कदापि नहीं। तब वह खोटे कर्मों से स्वयमेव छूट जाएगा। भगवान्–अर्पित कर्म करने का परिणाम इतना महत्त्वपूर्ण होता है कि मनुष्य देवता बनने लगता है। इसी भाव को लेकर कृष्ण भगवान् ने वीर–श्रेष्ठ अर्जुन से कहा था–

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

(गीता. 9–27)

"हे अर्जुन ! तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरण–रूप तप करता है, सब मेरे अर्पण कर।"

हवन–यज्ञ करनेवाले भी तो यही

करते हैं। घृत अथवा सामग्री की प्रत्येक आहुति देकर 'इदन्न मम' का शब्द कहते हैं। इसका प्रयोजन भी यही है कि यह मेरी नहीं, अपितु अग्निरूप, वरुणरूप, प्राणरूप भगवान् की है, आहुतियों के साथ–साथ समर्पण का कार्य भी होता चला जाता है। इस प्रकार एक भक्त का जीवन और उस जीवन का एक–एक श्वास प्रभु–अर्पण होता रहता है। वह फिर अपने लिए नहीं जीता, भगवान् के लिए जीता है, वह अपने लिए नहीं खाता, प्रभु के लिए खाता है। जब उसका खाना, पीना, सोना, व्यायाम करना, हवन करना, धनोपार्जन, सन्तान का पालन करना, सभा–समाज की सेवा करना, सब–कुछ प्रभु–अर्पण हो जाता है तो फिर चाहे उसे रूखी रोटी मिले या घी से चुपड़ी हुई, सुख मिले या दुःख, जीवन की आस रहे अथवा मृत्यु ताण्डव करे, किसी भी अवस्था में भक्त का मन उदास नहीं होता। प्रत्येक बात का वह स्वागत करता है। कितना ऊँचा उठ जाता है ऐसा भक्त ! देखनेवाले आश्चर्य करते हैं और भक्त उनके आश्चर्य पर ही हँसता है। जब अपने–आप को प्रभु के समर्पण कर दिया, तब वह जैसे चाहे हमारा प्रयोजन करे, हमें कोई शिकायत रहती ही नहीं।

छठा साधन–उपासना

मन को निर्मल करने का एक और उपाय भी है। इसकी महिमा भी किसी से कम नहीं। वह है **"उपासना"** अर्थात् पास बैठना। जिस परमात्मा को हम पाना चाहते हैं, जब तक उसके पास बैठने का अभ्यास नहीं डालेंगे तब तक उसे पाएँगे कैसे ?

महाराज भगवान् दयानन्द ने 'ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका' में लिखा है–"उपासना दो प्रकार की है एक सगुण, दूसरी निर्गुण। जगत् का रचनेवाला, वीर्यवान्, शुद्ध, कवि, मनीषी, परिभू और स्वयम्भू इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण है, तथा अकाय, अव्रण, अस्नाविर इत्यादि गुणों से रहित होने से यह निर्गुण कहाता है।" जब हम यह कहते हैं कि परमात्मा सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है, शुद्ध और सनातन है, सबको उसी ने उत्पन्न किया है, ये पर्वत, ये नदियाँ, ये स्रोत, 'समुद्र, ये मीलों लम्बे रेगिस्तान, ये सुन्दर वन, ये पुष्प, ये सेव, यह विद्युत् उसी की महिमा हैं, ये सूर्य और चाँद, ये तारे और नक्षत्र उसी की आज्ञा से घूमते हैं और यह सारा संसार उसी की ओर अँगुली उठाये संकेत कर रहा है और भगवान् इन सबके भीतर–बाहर ओत–प्रोत हो रहा है, कोई भी स्थान उससे खाली नहीं, तो हम सगुण भगवान् की उपासना करते हैं। उसकी महिमा को देखकर, उसके पराक्रम को देखकर, उसकी असीम विशालता को देखकर, उसके गुणों का वर्णन करते हुए हम उसकी सगुण उपासना करते हैं। जब यह कहते और विचारते हैं कि वह स्वयं अजर, अमर, निराकार और निर्विकार है, यह कभी बन्धन में नहीं आता, न वह गणना में आता है, न उसका तोल है न माप, वह अरूप है, वह अनादि है, अनन्त है, बिना गंध के है, बिना स्पर्श के है, तब हम उसकी निर्गुण उपासना करते हैं।

ये दोनों प्रकार की उपासनाएँ नित्य–प्रति करनी चाहिएँ। दोनों प्रकार के मन्त्र वेद भगवान् में हैं. इनका पाठ करना आवश्यक है। इनके पाठ के पश्चात् प्रभु के निकट बैठने की बारी आती है। पूर्वोक्त साधनानुसार आसन से स्थित हो प्राणायाम करके अब उस गुहा में प्रवेश कीजिए जहाँ प्रभु दिखाई देता है। इसकी विधि भगवान् दयानन्द ने यह लिखी है–

"कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृद्देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार का वेश्म अर्थात् अवकाश–रूप एक स्थान है, और उसके बीच जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर– भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्द–स्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान व मार्ग नहीं है।"

योगिराज ने उपनिषद् के अनुसार कितना सरल, सीधा और ठीक ठिकाना प्रभु का बतला दिया है ! इसे पाकर भी यदि हम प्रभु के निकट न जाएँ तो हमारा दुर्भाग्य है और जब एक बार हृदय की गुहा में निहित, ज्योति से भरपूर उस स्थान में प्रभु को देख लिया तो फिर शेष क्या रह जाता है ?

हृदय कहाँ ?

कुछ लोगों का मत है कि हृदय की गुहा सिर में है। मस्तिष्क से ऊपर और खोपड़ी के नीचे एक स्थान है, जिसे क्षीरसागर भी कहते हैं। वहीं ब्रह्मरन्ध्र भी है इसीलिए उस ब्रह्मचक्र में ध्यान की बात वे कहते हैं, परन्तु उपनिषद् हृदय की गुहा कण्ठ के नीचे बतलाते हैं। मुझे इन दोनों में कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती। बात स्पष्ट है–प्रभु के पाने के दो ही साधन हैं–एक विज्ञान और दूसरे मन की एकाग्रता। विज्ञान का स्थान है मस्तिष्क और चित्त का स्थान है दोनों स्तनों के बीच हृदयाकाश। इन दोनों का मिलाप होना आवश्यक है। जब तक विज्ञान प्राप्त न हो जाए तब तक प्रभुदर्शन नहीं हो सकते। इसीलिए सबसे पूर्व भक्त को आत्मज्ञान लेने के लिए आज्ञा चक्र (भूमध्य) में जाना होता है, हेड ऑफिस इसी स्थान पर है। यहाँ जब भक्त प्रयत्न करता है और अपने को विज्ञानी सिद्ध करता है, अधिकारी साबित करता है, तब उसे हृदय की गुहा में जाने का पासपोर्ट मिल जाता है। वहाँ से पासपोर्ट लेकर फिर वह हृदय की गुहा में घुसता है। यहीं दर्शन होते हैं। अथर्ववेद के केन सूक्त (20–2) में इसी विषय का बहुत ही सुन्दर (26वाँ) मन्त्र है–

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः।।

"एकरस रहनेवाला पवित्र ईश्वर इस मनुष्य के हृदय को सीकर (जगत् में भेजे) वह मस्तिष्क से ऊपर होकर सिर के नीचे हृदय में आता है।"

अर्थात् परमात्मा को पानेवाले भक्त के लिए आवश्यक है कि वह मस्तिष्क और हृदय को एक बना ले। यह न हो कि बुद्धि तो किसी दूसरी ओर जाने का आदेश करे और मन कहीं और घसीट ले चले। दोनों को सीकर एक कर देना होगा। इनको सीए बिना काम नहीं चलेगा। इस सम्बन्ध में एक बहुत ही रोचक भाव श्री महात्मा नारायण–स्वामी जी ने बताया है कि परमात्मा तर्क से परे है अर्थात् मस्तिष्क से ऊपर है और हृदय ही में, जो प्रेम, श्रद्धा और भक्ति का स्थान है, उसके दर्शन होते हैं। यदि यह समझ लिया जाए कि जीवन–काल में प्रभु–दर्शन हृदयाकाश में होते हैं और मृत्यु के समय आत्मा के ब्रह्मचक्र में, तो सारी उलझन सुलभ जाती है। इसी अवस्था में ब्रह्मरन्ध्र में से होकर शरीर छोड़ने का विधान है। उपनिषद् में लिखा है कि भक्तों और योगियों का आत्मा मृत्यु–समय इन्द्रयोनि में (माँस का एक लोथड़ा–सा गले में जो लटक रहा है) आ जाता है और फिर वहाँ से सीधा ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में होकर शरीर के बन्धन से मुक्त हो जाता है। ऐसे भक्त मोक्ष के अधिकारी होते हैं। यह बात सम्मुख रखने से मस्तिष्क और हृदय का कोई झगड़ा बाकी नहीं रहता। भक्त के लिए आवश्यक है कि वह ब्रह्मचक्र तक अपनी गति कर ले। वहाँ तक पहुँच हो जाने के पश्चात् हृदय की गुहा में उतरने की आज्ञा मिल जाती है। यहीं दर्शन होते हैं और फिर मृत्यु–समय में इसी ब्रह्मचक्र द्वारा भक्त की आत्मा शरीर त्याग देती है।

क्रमशः

आर्य जगत् सम्बंधी घोषणा
(फार्म–4 नियम 8 देखिये)

1.	प्रकाशन का स्थान	:	आर्य समाज बिल्डिंग, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001
2.	प्रकाशन–अवधि	:	साप्ताहिक
3.	मुद्रक का नाम	:	एस के शर्मा
	क्या भारत का नागरिक है?	:	हाँ
4.	मुद्रक का पता	:	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001
5.	प्रकाशक का नाम	:	एस के शर्मा
6.	क्या भारत का नागरिक है?	:	हाँ
7.	प्रकाशक का पता	:	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001
8.	सम्पादक का नाम	:	पूनम सूरी
	क्या भारत का नागरिक है?	:	हाँ
	सम्पादक का पता	:	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001
	उन सभी व्यक्तियों के नाम पते जो समाचार–पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत के हिस्सेदार हों–	:	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001

मैं एस के शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर दिये गये विवरण सत्य है।

दिनांक 01–03–2026

एस के शर्मा
प्रकाशक

श्रीराम वैदिक मर्यादा पुरुषोत्तम थे

ईश्वर का अवतार नहीं होता

● पं. नन्दलाल निर्भय

देवपुरुष श्रीराम थे, ईश्वर–भक्त महान्।
देशभक्त गुणवान थे, महावीर बलवान।।
जीवनभर श्रीराम ने, किये धर्म के काम।
इसीलिए गुण गा रहा, उनके जगत् तमाम।।
बता रहे जो राम को, ईश्वर का अवतार।
वे सचमुच नादान हैं, भारी मूढ़ गँवार।।
बिना विचारे बक रहे, नहीं धर्म का ज्ञान।
वे जाएँगे नर्क में, निश्चय लो तुम जान।।

प्यारे धर्म प्रेमियो ! इस संसार में चार प्रकार के व्यक्ति हैं। पहली प्रकार के व्यक्ति वे हैं जो जानते हैं और मानते हैं, दूसरी प्रकार के वे हैं जो, जानते नहीं परन्तु मानते हैं। तीसरे प्रकार के वे हैं जो जानते हैं लेकिन मानते नहीं तथा चौथी प्रकार के व्यक्ति वे हैं जो न जानते हैं, और न मानते हैं। इन व्यक्तियों में तीसरे, चौथे नम्बर के व्यक्ति समाज एवं संसार के लिए ज्यादा अहितकर एवं भारी घातक हैं। हमें ऐसे स्वार्थी व्यक्तियों से सदैव सावधान रहते हुए दूसरों को भी सचेत करना चाहिए तभी हम सच्चे ईश्वर–भक्त धर्मात्मा माने जाएँगे।

इस लेख द्वारा मैं वैदिक मर्यादा पालक श्री रामचन्द्र महाराज के पवित्र जीवन पर प्रकाश डालते हुए धर्मप्रेमी जनता को उनके जीवन सम्बंधी कुछ जानकारी देकर ईश्वर अवतार होने की भ्रान्ति दूर करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। आशा है, समझदार धर्मात्मा पाठक सच्चाई को स्वीकार करके मेरे श्रम को सफल करने की कृपा करेंगे।

रामायण का प्रारम्भ महर्षि वाल्मीकि जी के नारद मुनि से किए गए इस प्रश्न से होता है:–

कोवास्मिन् साम्प्रतम लोके
गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।।
चारित्रेण च को युक्त सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।।
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् को ऽनसूयकः।
कस्य विभ्यति देवाश्च जातदोषस्य संयुगे।।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुम् परमं कौंतूहलम् हि मे।
महर्षे त्वम् समर्थोऽसिज्ञातुमेवंविधम् नरम्।।
(वाल्मीकि रामायणस्म् सर्ग–1)

अर्थात् इस संसार में वीर धर्म को जानने वाला, कृतज्ञ, सत्यवादी, सच्चरित्र, सब प्राणियों का हितकारी, विद्वान्, उत्तमकार्य करने में समर्थ, सबके लिए प्रियदर्शन वाला, जितेन्द्रिय, क्रोध को जीतने वाला, तेजस्वी, ईर्ष्या न करने वाला, युद्ध में क्रोध करने वाला, देव भी जिससे भयभीत हों, ऐसा मनुष्य कौन है, यह जानने की मुझे उत्सुकता है। महर्षि ! क्या आप ऐसे मनुष्य को जान सकते हो क्या मुझे कृपया उसके विषय में बता सकते हो।

यहाँ प्रश्न में **"महर्षि त्वं समर्थो असि ज्ञातुमेवं विघं नरम्"** ये शब्द आए हैं जिनका अर्थ स्पष्ट है कि तुम्हीं इस प्रकारके गुणों से युक्त (नर) मनुष्य को जान सकते हो। उसके विषय में मुझे बताओ।

वेद साक्ष्य

'धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः' इस मनु–वाक्य के अनुसार धर्म के जिज्ञासुओं के लिए अखिल धर्मों का मूल वेद है, प्रमाण है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के आठवें मन्त्र में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है–

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमकन्नाविरं
शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः तोऽर्थान्
व्यदधाहाश्वती भय समान्न।।
यजुर्वेद 40.8

अर्थात् वह परमेश्वर सर्व व्यापक, न्यायकारी, सर्वशक्तिमान् (स्थूल सूक्ष्म और कारण) शरीर से रहित, छिद्ररहित, नस और नाड़ियों के बंधन से परे, शुद्ध, पवित्र, निष्पाप, क्रान्तदर्शी, सर्वज्ञ, सबके मनोभावों को जानने वाला, दुष्ट और पापियों का तिरस्कार करनेवाला तथा सबके ऊपर विराजमान है। वह स्वयम्भू अनादि स्वरूप है। वह अपनी सनातन प्रजा (लोकों) के लिए यथार्थभाव से सब पदार्थों को रचता है।

न तस्य प्रतिमास्ति यस्यनाम महद्यशः
यजुर्वेद 32–3

उस ईश्वर की कोई अनुकृति नहीं है, जिसके नाम का महान यश है। अर्थात् इस मंत्र में अवतारवाद की कल्पना का कैसा स्पष्ट खण्डन है।

उपनिषद्–साक्ष्य

उपनिषदों में भी ईश्वर को निराकार और जन्मरहित वर्णित किया है–

सशरीरम् शरीरेषु (कठो.–2/22)
अपाणिपादो जवनोग्रहीता पश्यत्यचक्षुः
स श्रृणोत्यकर्णः।
न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुदग्र्यँ
पुरुषं महान्तम्।
(श्वेवाश्वेतर–3.19)

वह परम पुरुष हाथ व पैर से रहित है, वह स्व संकल्प से वेगवान और ग्रहण करने वाला है। वह नेत्र रहित है, किन्तु सबको देखता है, उसके, कान नहीं हैं परन्तु सब कुछ सुनता है। वह सब कुछ जानता है। उसे पूर्णरुपेण जानने वाला कोई नहीं है। उसी भगवान को ज्ञानी लोग सबसे मुख्य और महान पुरुष बताते हैं।

वेदाहमेतम जरं पुराणं सर्वात्मानं
सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्मनिरोधम् प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो
हि प्रवदन्ति नित्यम्। वेदा 3/21

अर्थात् ईश्वर का साक्षात्कार कर ब्रह्मवादी कहता है–मैं उस अविनाशी, सनातन, सर्वद्रष्टा और सामर्थ्यवान होने से सर्वत्र व्यापक ईश्वर को जानता हूँ। ब्रहमवादी कहते हैं कि वह नित्य है और कभी जन्म नहीं लेता। यहाँ अवतारवाद का स्पष्ट खण्डन है।

दर्शन–साक्ष्य

दर्शन के प्रमाण भी अवतारवाद के खण्डन में दर्शनीय हैं।

क्लेश कर्म विपाकैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।। यो. 1.24

अविद्या आदि पंच क्लेश, कर्म–फल और वासनाओं के संसर्ग से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है। इस लक्षण से सिद्ध है कि ईश्वर देहधारी नहीं हो सकता क्योंकि ये सब बातें देहधारियों में होती हैं।

करणवच्वेन्द्र भोगादिभ्यः। वे.द. 2.2.40

यदि ऐसी कल्पना की जाए कि ईश्वर शरीरधारी है, और उसके नेत्र, कर्ण इन्द्रियाँ आदि हैं तो ऐसा मानना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मानने से ईश्वर में भोग शोक, दुःख, बुढ़ापा आदि दोष आ जाएँगे। अतः ईश्वर शरीर धारण नहीं करता।

अन्तवन्तमसर्वज्ञातावा। वि.द. 2.3.43

यदि ईश्वर को शरीरवाला माने तो उसे अन्तवाला मानना पड़ेगा। अन्त वाला सर्वज्ञ नहीं हो सकता और जो सर्वज्ञ नहीं है वह परमात्मा नहीं हो सकता।

न च कर्तुः करणम्। वै.द. 2.2.43

अतः सिद्ध हुआ कि ईश्वर के इन्द्रिय आदि साधन नहीं हैं।

प्रश्न : किन्तु अन्यत्र तो ईश्वर का अवतार होने का दर्शनों में वर्णन आता है, देखिए–

लोकवतु लीला कौशल्यम्

परमात्मा लीला करने के लिए अवतरित होता है।

उत्तर– इस सूत्र का यह अर्थ नहीं है, इसपर शंकराचार्य जी का अर्थ देखियेः–जैसे श्वास–प्रश्वास बिना किसी प्रयत्न के चलते रहते हैं, ठीक इसी प्रकार बिना किसी प्रयत्न के संसार की रचना करता है। संसार की रचना के लिए उसको विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता। इस प्रकार वेद, उपनिषद, दर्शन सभी ईश्वर को निराकार, अजन्मा, अशरीरी, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान कहते हैं।

वालमीकि रामायण, गीता, महाभारत में भी ईश्वर को निराकार अजन्मा बताया गया है। आज से लगभग पाँच सौ वर्ष पहले सन्त तुलसीदास ने अकबर के शासन काल में रामचरित मानस की रचना की थी जिसमें काफी सामग्री वेद विरुद्ध मिलती है, किन्तु कई बातें वेदानुकूल भी हैं। जैसे–एक चौपाई, यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है पौराणिक बंधु ध्यान देने का कष्ट करेंगे। यथा–

बिन पग चलै, सुनै बिन काना।
बिन कर काम करै, विधि नाना।।

अर्थात ईश्वर बिन पैरों के चलता है, बिना कानों के सुनता है तथा बिना हाथों के तरह–तरह के काम करता है। इससे सिद्ध होता है कि ईश्वर निराकार, अजन्मा, अशरीरी, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी है, उसे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है इसलिए उसे अवतार लेने की कोई आवश्यकता नहीं है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार विदित होता है कि श्री राम नित्यप्रति संध्या–हवन करते थे। वे सच्चे ईश्वरभक्त, धर्मात्मा, न्यायकारी, परोपकारी, माता–पिता, गुरुओं एवम् ऋषि–मुनियों के सच्चे भक्त, निर्बलों–निर्धनों के सबल सहायक महापुरुष थे।

अतः हमें भी उन जैसा त्यागी–तपधारी सच्चा मानव बनकर संसार को सुखी–सानन्द बनाने के लिए वैदिक मर्यादा का पालन करना चाहिए। हमें श्री रामचन्द्र, माता सीता तथा लक्ष्मण जैसे महामानवों के चरित्र की पूजा करनी चाहिए। याद रखो, चित्र की पूजा करने से कल्याण नहीं होगा। अन्त में मेरा निवेदन है–

जागो प्यारे साथियो ! मनमानी दो छोड़।
जगत् पिता जगदीश से, नाता लो सब जोड़।।
पर नारी माता समझ, परधन मिट्टी मान।
सब जीवों को लीजिए, अपना जैसा जान।।
सुख पाओगे हर तरह, करो प्रभु का ध्यान।
वेदों के पथ पर चलो, यदि चाहो कल्याण।।
गन्दी आदत छोड़ दो, करो धर्म के काम।
रामचन्द्र, सीता बनो, करो विश्व में नाम।।
जगत् गुरु दयानन्द की, शिक्षाएँ लो मान।
भरत और–लक्ष्मण बनो, भारत माँ की शान।।

आर्य सदन बहीन–जनपद,
पलवल, (हरियाणा)

पं. गुरुदत्त विद्यार्थी निर्वाण दिवस पर विशेष

ईश्वर तेरी मर्ज़ी पूरी हो

● डॉ. राम प्रकाश

महामना पण्डित गुरुदत्त साधारण व्यक्ति नहीं थे। उनके जीवन का एक लक्ष्य था, हेतु था। ऋषि के अन्तिम दर्शन ने उनके लिए मार्ग निश्चित कर दिया था। गुरु के पवित्र कार्य को शिष्य पूरा करना चाहता था इसीलिए वे युवावस्था में ही एकदम धीर गम्भीर हो गए थे। ऋषि के कार्य को करने के लिए उन सदृश बनना आवश्यक था। इस कारण अपनी समस्त न्यूनताओं को समाप्त कर अविलम्ब ऋषि समान बनने की इच्छा थी। यह उनके जीवन का रहस्य था। सारे प्रयत्न इसीलिए किए गए। इसीलिए योगाभ्यास किया, इसीलिए वेदाध्ययन, इसी के लिए धर्म प्रचार किया और इसी के लिए आत्मसमर्पण। जब देखा कि लक्ष्य और तैयारी के बीच खाई चौड़ी है, यह पाटी न जा सकेगी, इस जीवन में इस खाई को लाँघना कठिन है, तो नया शरीर लेकर अधिक शक्ति तथा नई तैयारी के साथ इस कार्य में जुट जाने के लिए सहर्ष अपना जीवन यमराज को अर्पित कर दिया। इस लक्ष्य की बलिवेदी पर अपनी आहुति देकर वे 'धर्मवीर' बन गए, अमर शहीद हो गए। शहीद शब्द का प्रचलित अर्थ भले कुछ भी हो, वे सही अर्थों में शहीद थे। जीना चाहते तो अभी और जी सकते थे, पर धर्म धुन ने उन्हें जीने न दिया। उन्होंने अपना जीवन ऋषि की राह पर स्वेच्छा से न्योछावर कर दिया।

उनके जीवन के आदर्श के विषय में यह कोई कपोल कल्पना नहीं है, अपितु घटना–चक्र से स्पष्ट है। गुरुदत्त ने स्वयं इसे स्वीकार किया है। पण्डित जी से पूछा गया, "आप ऋषि का जीवन–चरित लिखना चाहते थे, वह जो सामग्री का चयन हो रहा था, कहाँ है ?" अहा, क्या प्यारा उत्तर दिया। बोले–

> **"ऋषि का जीवन कलम से नहीं, स्याही से नहीं लिख रहा, कागज पर नहीं लिख रहा, अपने प्राणों से, अपने रक्त से हृदय पर लिख रहा हूँ। शरीर ने साथ नहीं दिया। मैं इस जीवन में दयानन्द–सा न बन पाया इसलिए मैं यह शरीर छोड़ रहा हूँ ताकि अगली बार इस कार्यसिद्धि के लिए आत्मा को अधिक उपयुक्त शरीर मिले।"**

जिन दिनों मुनिवर जलवायु परिवर्तन के लिए मंसूरी गए हुए थे, तब इसी विश्वास से भरा एक पत्र पण्डित रामभजदत्त को लिखा। उसमें अंकित थे ये स्वर्णिम शब्द – "इफ आई डाई, आई विल गैट ए बैटर शरीर" – "यदि मैं मरुँगा, तो मुझे इससे उत्तम शरीर मिलेगा।" 1889 ई. की शीत ऋतु थी। मास्टर आत्माराम अमृतसरी और लाला जगन्नाथ पण्डित दर्शनों के लिए उपस्थित हुए। बातचीत होती रही। उन्होंने पूछा – "जी ! आप प्रेम तथा विद्या की मूर्ति हो। फिर भी न जाने यह भयंकर रोग आपको कैसे लग गया।" यह सुनकर पण्डित जी मुस्करा दिए और बोले– "क्योंकि ऋषि दयानन्द की महान् विद्या और बल मेरी इस मलिन बुद्धि और तुच्छ शरीर में नहीं आ सकती थी, इसलिए प्रभु मुझे इससे उत्तम बुद्धि तथा उत्तम शरीर देने का उपाय कर रहा है ताकि मैं अगले जन्म में अपनी इच्छा पूरी कर सकूँ।" **{आत्माराम अमृतसरी, ब्रह्मयज्ञ, पृष्ठ 145}** कितना विश्वास था उन्हें! अधिक से अधिक दुःख में भी उफ़ न की। बस, ईश्वर प्रार्थना करते रहते। जब उनके स्वास्थ्य के बारे पूछा जाता तो यही कहते – "खाँसी आती है।" बीमारी के दिनों में मलिक ज्वालासहाय ने पूछा कि आपको कष्ट तो नहीं होता। उत्तर दिया – "मलिक जी! जब यह विश्वास हो गया कि आत्मा अमर है तो कष्ट कैसा ! कष्ट तो उनके लिए है जो आत्मा को अमर नहीं मानते।"

ऋषि का जीवन कलम से नहीं, स्याही से नहीं लिख रहा, कागज पर नहीं लिख रहा, अपने प्राणों से, अपने रक्त से हृदय पर लिख रहा हूँ। शरीर ने साथ नहीं दिया। मैं इस जीवन में दयानन्द–सा न बन पाया इसलिए मैं यह शरीर छोड़ रहा हूँ ताकि अगली बार इस कार्यसिद्धि के लिए आत्मा को अधिक उपयुक्त शरीर मिले।

इस विश्वास के कारण वे रुग्णावस्था में भी विचलित नहीं हुए। प्राणों का मोह बड़े बड़ों को पथभ्रष्ट कर देता है पर मृत्यु गुरुदत्त को भयभीत कर सके – यह सम्भव न था। वह था भी तो उसी महान् गुरु का शिष्य। शिष्य ने गुरु के हाथों मौत की मौत होती देखी थी। वह इतिहास की पुनरावृत्ति के लिए उतावला था इसीलिए जीवन–रक्षा हेतु जब मार्च महीने में चिकित्सकों ने मांसाहार का परामर्श दिया तो धर्मवीर ने उसे ठुकरा दिया। बोले – "क्या मांस खाकर अमर हो जाऊँगा? फिर तो कभी मौत नहीं आएगी? यदि मृत्यु निश्चित है तो फिर एक निरपराध प्राणी के प्राण लेने का क्या लाभ?" **{निहालचन्द भण्डारी, उन्नीसवीं सदी का सच्चा शहीद अर्थात् पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी, एम.ए., (क) पृष्ठ 83–4, (ख) पृष्ठ 92–9, (ग) पृष्ठ 154–6}** आयु भर जिस सिद्धान्त का प्रचार किया, अन्तिम समय भी उसे नहीं छोड़ा। सर्वाधिक कठिन घड़ी में परीक्षा ली गई, पर वे सफल रहे।

दिन व्यतीत हो गए, और सप्ताह तथा मास भी। एक–एक दिन करके समय सरकता गया। आज 18 मार्च है, पूर्ववत् वही सूर्य उदय हुआ है, उसकी किरणों ने कहीं अन्धेरा नहीं छोड़ा, पूरी शक्ति से चमक रहा है, पर हृदय–गुहा का तिमिर नहीं हटा पा रहा। प्रातः वेला में पक्षियों ने मधुर गीत गाकर आनन्द की वर्षा करनी चाही, पर नहीं, आर्यों के हृदय आनन्द से खाली हैं, शीतल समीर ने हृदय सागर में हिलोरें उत्पन्न करनी चाहीं, पर व्यर्थ ज्यों–ज्यों समय व्यतीत हो रहा है, चिन्ता बढ़ती जा रही है, मुखमण्डल मुरझाए हुए हैं, शोक टपक रहा है, माँ का हृदय विदारक क्रन्दन पत्थर को भी चीर रहा है। सर्वत्र दुःख. ....दुःख और केवल दुःख। पक्षी उड़ने वाला है, दीप बुझा चाहता है। इष्ट मित्रों से जितना हो सका, किया, अब कोई चारा नहीं। हे नाथ! जिसका कोई सहारा नहीं, उसका सहारा तुम हो। हे दयामय प्रभु! तुम्हीं दया करो। क्या तुम्हारे नियम में कोई अपवाद नहीं? क्या ढील की कोई गुंजाइश नहीं? देखो पिता! अभी तो युवावस्था भी पूरी नहीं हुई दया करो, देव!

सायंकाल चार बजे एक दस्त लगा। कुछ कमजोरी अनुभव की पर पन्द्रह मिनट में ठीक हो गए। कुछ खाने के लिए मांगा, थोड़ा चावल और दूध दिया गया, सूर्य अस्त हो गया, दिन बीत गया, पीड़ा और बढ़ गई पर महामना गुरुदत्त पूर्ववत् प्रसन्नचित्त हैं। वे अपने पिता के बुलावे पर जा रहे हैं, फिर प्रसन्न क्यों न हों? पर जिनका सर्वस्व लुटने वाला है – वे रो रहे हैं, उनकी आँखों से नीर झर रहा है, कोई आशा नहीं, कोई आशा नहीं – मुँह से यही शब्द निकल रहे हैं।

उस दिव्य लोक के वासी की इस धरती पर यह अन्तिम रात्रि है। वह जा रहा है, जाने की सारी तैयारी पूर्ण कर ली है। कोई शक्ति भी अब उसे रोक नहीं सकती। वेदमन्त्रों का उच्चारण कर रहे हैं। ईश्वरोपासना और ध्यान में लीन हैं। सहसा पूछते हैं "क्या समय है ?" नन्दलाल ने कहा, "ग्यारह बजे है।" "और तिथि क्या है ?" ""चैत्र कृष्णा त्रयोदशी, मंगलवार" अच्छा, मेरे चाचा जी को बुलाओ।" वे तुरन्त आ गए। चाचा जी प्रतिदिन भजन सुनाया करते थे। उन्हें 'शान्ति सरोवर' के स्वयं चुने दो भजन सुनाने के लिए कहा गया। चाचा जी ने भजन सुनाए। मन्त्रपाठ करते तथा भजन गाते समय व्यतीत होता रहा। बीच–बीच में सबको मन्त्रों के अर्थ समझाते रहे। फिर वह पवित्रात्मा बोली–"मैं सर्वथा शान्त हो गया मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं।" रात के बारह बज गए थे, तब 18 मार्च यह पवित्र धरोहर 19 मार्च को सौंपकर चल दिया। पर हाय! उससे इस धरोहर की रक्षा न हुई।

रैमलदास आदि भक्तजन पाँच–पाँच मिनट के बाद नाड़ी देख रहे थे, मानो भुजा पकड़कर रोक रहे हों, पर जाने वाला किससे रुका है? एक बज गया, दो बज गए, फिर तीन और चार। महात्मा गुरुदत्त ने पूछा – क्या समय है ? भक्त रैमलदास बोले–चार बजे हैं। फिर भक्त रैमलदास को भजन सुनाने को कहा। भक्त जी कहने लगे कि मैं भजन नहीं जानता, उपनिषद् सुनाता हूँ। उत्तर मिला अच्छा ! भक्त जी ने झटपट ईशोपनिषद् का पाठ आरम्भ कर दिया। ईशोपनिषद् का पूरा पाठ सुनकर फिर सो गए। पाँच बजे उठे और बोले – श्वास रुक रहा है, नीचे उतारो। 'शान्ति–शान्ति' कहते हुए जमीन पर लेट गए। **{निहालचन्द भण्डारी, उन्नीसवीं सदी का सच्चा शहीद अर्थात् पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी, एम.ए., (क) पृष्ठ 83–4, (ख) पृष्ठ 92–9, (ग) पृष्ठ 154–6, भारत सुधार, 29 मार्च, 1890}** भीषण पीड़ा, पर मुख पर प्रसन्नता। इधर मुस्कराते कमल नयन, उधर अनेक अश्रुपूरित नेत्र। इधर इष्ट मिलन की आशा, उधर इष्ट बिछोह की चिन्ता। यही कहते रहे – 'ईश्वर तेरी मर्जी पूरी हो।' छह बजे और फिर सात बज गए। सवेरा हुआ, एक सूर्य निकला दूसरा अस्त हो गया, कुछ ही क्षण लगे कि प्राण पंखेरु उड़ गए। सब देखते रह गए, पिंजरा खाली पड़ा है – तोता उड़ गया। क्या था, क्या हो गया।

यह दुःखद समाचार नगर में फैलते

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

गतांक से आगे...

उत्पत्ति का विज्ञान क्या है?

● श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

{श्री हरिश्चन्द्र वर्मा जी के अपनी अनन्त यात्रा पर चले जाने के बाद उनके सुपुत्र द्वारा वर्मा जी द्वारा लिखित लेखों की कुछ अप्रकाशित प्रतियाँ 'आर्यजगत्' को भेजी गई थी। समय–समय पर उस सामग्री को आर्यजगत् के पाठकों को परोसा जाता है। 'उत्पत्ति विज्ञान' पर वर्मा जी का लेख धारावाहिक रूप में प्रस्तुत है।–सम्पादक}

सृष्टि की आदि उत्पत्ति

विश्वकर्मा ईश्वर को **'भूः'** अर्थात् इस धरती को जीवन उपयोगी बनाकर अंत में मनुष्य देवों का उत्पन्न करना था। इसलिये सृष्टि की आदि में सर्वप्रथम 'सत् और ऋत' से पृथिवी की सृष्टि उस 'विराट्' अग्नि और समुद्रादि जल क्रम से हुई, साथ ही धाता परमेश्वर ने सूर्य चन्द्रादिलोकों को भी उत्पन्न कर दिया।

जैसा कि 'भूमि की प्राथमिकता' के सम्बन्ध में मनु. 1.13 के अनुसार 'हिरण्याण्ड' के दो शकलों से 'दिव और भूमि' का निर्माण हुआ।

तद्नुसार भूमि तो पहिले बनी और दिव के सूर्य लोक आदि अनेक अंग भी सविता से अस्तित्व में आ गये। भूमि के विषय में शतपथ, ब्रा. में लिखा है–

इयमु (भूमिः) वा एषां लोकानां प्रथममसृज्यत। 6.5.3.1।।

अर्थात्–यह भूमि इन लोकों में प्रथम उत्पन्न हुई। दैवी सृष्टि में **'भूः'** व्याहृति की उत्पत्ति के समय ही भूमि बनी थी–**'स भूरिति व्याहरत। स भूमिमसृजत।'** तै. बा. 2.2.4.2।।

पश्चात् बहुत परिवर्तन के बाद समुद्र ने अपने गर्भ से एक भाग भूमि को निकाल दिया और उस एक भू भाग को जिनमें द्वीप, महाद्वीप हिमालय भी थे, उन्हें तीन ओर से घेर रक्खा। क्रमशः इन्द्र, वरुण, समुद्र, हिमालय, वायु और सूर्य चन्द्रादि के प्रभाव से–बादल, बिजुली और वृष्टि होने लगी। किन्तु सृष्टि के आदि में कई स्थानों में ज्वालामुखी एवं बड़े–बड़े भूकंप होने लगे। प्रथम भूकंप के प्रलय से छोटे और बड़े से बड़े पत्थरों के पहाड़ बन गये और उन पहाड़ों के अनेक स्थानों से छोटी बड़ी अनेक नदियाँ बहने लगीं। लाखों वर्ष बाद क्रमशः छोटे–बड़े वृक्षों के पहाड़ उत्पन्न होने लगे और जीवन उपयोगी मौलिक उपादानों से विभिन्न स्थानों में जहाँ–जहाँ वातावरण ठीक था, वहाँ–वहाँ जीवों का प्रादुर्भाव होने लगा, क्रमशः प्राणियों की उत्पत्ति होने लगी। पुनः द्वितीय प्रलय से बड़े–बड़े भूकंप होने लगे उन भूकंपों आदि में अनेक स्थानों के वृक्षों के पहाड़ और अनेक जीव–जन्तु धरती में दब गये, और अष्टधातु तथा खनिज पदार्थ कोयला, तेल, गैस आदि भूगर्भ में रूपान्तरित होने लगे।

ईश्वरीय नियम ऐसा है कि प्रलय में विश्व के समस्त वृक्ष–वनस्पतियाँ और सारे प्राणियों (एवं उनके बीजों) का सर्वनाश नहीं होता। पुनः लाखों वर्ष के पश्चात्, जो धरती में विस्फोट क्रिया से ज्वालामुखी और बड़े–बड़े भूकंप होते थे और जिनके द्वारा पत्थरों के विभिन्न प्रकार के बड़े–बड़े पहाड़ दूर–दूर तक फैल गये थे, उनमें कितने गुफाओं जैसा और कई स्थानों से नदी, नाले, महानदियाँ बहने लगीं। इसके अलावा हिमालय से भी कई प्रकार की नदियाँ निकल गई, किन्तु यह अपूर्व प्राकृतिक देन थी, जो हरिद्वार के हिमालय के भीतर से पवित्र गंगा निकल गई, जिसके कीटाणु नाशक जल से इस भूखण्ड का महत्व बहुत बढ़ गया। तदुपरान्त, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ बहने लगीं। पहाड़ों से जल के स्रोत झरने लगे। इन सब सृष्टियों के परिवर्तनों से, 'पंचतत्वों' की स्थिति ठीक हो गई। अनेक स्थानों की धरती समतल एवं कहीं–कहीं रेतीली हो गई और अनेक स्थान उबड़–खाबड़ और अनेक स्थानों में विभिन्न प्रकार के वृक्षों के पहाड़, वनस्पतियों के जंगल उत्पन्न हो गये।

पश्चात् अनेक प्रकार के सामुद्रिक एवं नदी–नालों के जीवों, स्थल के प्राणियों, विभिन्न प्रकार के रेंगने वाले कीट, पतंग और उड़ने वाले वृक्षों पर रहने वाले पक्षियों, गोरिलाओं, बन्दर के वंशज बढ़ने लगे।

इन सबको प्रलय के बाद उत्पन्न करने वाली सर्वरक्षक ईश्वरीय शक्तियाँ थीं। आदिम काल में जलमय, वृक्षों के पहाड़ जंगल बहुत अधिक थे किन्तु छोटे–छोटे भूकंप और कहीं–कहीं ज्वालामुखी से लावा आदि निकलते रहते थे, क्योंकि इन अग्नेगिरिओं से वायु आदि के वातावरण में कुछ लाभ भी होता रहा, ऐसा वैज्ञानिकों का मानना है।

अतः सृष्टि के आदि में पंचतत्वों को जीवन उपयोगी बनाने में बहुत परिवर्तन हुआ और समस्त प्राणियों की उत्पत्ति होने के पश्चात्, अंत में मनुष्य की उत्पत्ति रह गई, जो ब्रह्म की शक्तियों से एक विशेष प्रकार की मानव उत्पादक प्राणी की उत्पत्ति हो गई, वे अनेक थे, जो मानव–मानवी के रूप में क्रमशः परिवर्तित हो गये।

वैज्ञानिकों का कहना है कि जिस प्राणी के द्वारा मानव का प्रादुर्भाव हुआ वे प्राणी नहीं रहे।

प्रोफेसर थामसन ने लिखा है कि 'हम नहीं जानते कि मनुष्य कहाँ से निकल आया या कैसे उत्पन्न हो गया ? यह बात खुले तौर से स्वीकार की जाती है कि मनुष्य की उत्पत्ति जिस प्रकार विकासवाद में बतलाई जाती है, वह प्रकार सम्भावना की सीमा से सीमित है, परन्तु उसका कोई स्थिर स्थान विज्ञान की सीमा में नहीं है।'

वैदिक ऋषि कहते हैं कि–**"महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः"** (कठोपनिषद्) अर्थात् महत्तत्त्व से परे अव्यक्त (मूल प्रकृति) और अव्यक्त से परे पुरुष (ब्रह्म) है। पुरुष और पुरुष विशेष अर्थात् जीव और ईश्वर रूप दो हैं और तीसरा वह प्रकृति तत्व है जो सृष्टि का उपादान कारण है, यें तीनो तत्व अनादि हैं और इन्हीं से सारी सृष्टि बनी है।

सृष्टि के पूर्व जब कुछ नहीं था, तब सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा था, अर्थात् सत् (मूल प्रकृति) और चित्त (जीवात्मा) के साथ 'आनन्द' स्वरूप परमात्मा विद्यमान था।

परमात्मा के सामर्थ्य से जब प्रकृति में क्रिया उत्पन्न हुई, तब उससे **'महत्'** उत्पन्न हुआ। यह महत् प्रकृति का पहला रुपान्तर है–तब महत् से अहंकार, अहंकार से पाँच तन्मात्रा, (तन्मात्रा भूतों का अत्यन्त सूक्ष्म रूप है। तन्मात्राओं में सारे भूतों का बीज होता है) पाँच तन्मात्राओं से पाँच महाभूत और दश इन्द्रियाँ तथा ग्यारहवाँ मन, ये चौबीस और पच्चीसवें तत्व जीवात्मा का जब इनसे संयोग हुआ तब शरीरधारी प्राणियों की उत्पत्ति होने लगी।

इनकी व्याख्या निम्न प्रकार है

जब प्रकृति में क्रिया उत्पन्न हुई, तब महतत्व से थोड़ा स्थूल 'अहंकार' उत्पन्न हुआ। अहंकार से पाँच तन्मात्रा (तन्मात्रा भूतों के अत्यन्त सूक्ष्म, भिन्न–भिन्न परमाणु हैं) अर्थात् इन तन्मात्राओं के परमाणु सब अनेक स्थूल अवस्थाओं को प्राप्त होते हुए तो क्रम से पाँच महाभूत अर्थात् पंचतत्त्व उत्पन्न हुए। किन्तु उन पाँच महाभूतों अर्थात् तन्मात्राओं में पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों के गुण विद्यमान् थे। जब उन दश इन्द्रियों के गुणों से आत्मा के सूक्ष्मशरीर से सम्बन्ध हुआ, तब उनसे स्थूल दश इन्द्रियों के साथ, स्थूल शरीर का विकास होने लगा और आत्मा के सूक्ष्मशरीर के साथ 'मन' उन इन्द्रियों से अपने कर्मों द्वारा (सुख–दुःख का) भोग और (अनुभव अर्थात्) ज्ञान करने लगा।

जीवात्मा में तीन शरीर के गुण बीज रूप से विद्यमान रहते हैं। पाँच प्राण (पाँच तन्मात्रा से) पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि, इन सत्तरह तत्वों का ज्ञातृत्व, कर्तृत्व और भोक्तृत्व का गुण सूक्ष्मशरीर में जीवात्मा के साथ विद्यमान रहता है। जब पंचतत्त्वों के वायु के द्वारा अन्न से वीर्य और वीर्य से गर्भ का सम्बन्ध होता है तब उस (आत्मा) से सूक्ष्म शरीर के द्वारा, स्थूलशरीर का निर्माण होने लगता है।

जीवात्मा का शरीर से सम्बन्ध होने पर उसकी तीन अवस्था होती हैं–**'जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति।'** पुनश्च – जीवात्मा के तीन शरीर के गुण उसमें बीज रूप से विद्यमान रहते हैं। जब पंचतत्वों के द्वारा अन्नमय कोश से सम्बन्ध होता है, तब आत्मा में व्याप्त सूक्ष्म शरीर के द्वारा, स्थूलशरीर का विकास होने लगता है और शरीर में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय कोशों का निर्माण हो जाता है।

शरीर के दो भेद हैं– एक भौतिक जो सूक्ष्मभूतों के अंशों से बना है। दूसरा–स्वाभाविक जो जीवात्मा के गुण रूप हैं (यह दूसरा अभौतिक आत्मा मुक्ति में भी

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

पाठक ! कृपया ध्यान दें

महान् त्यागी, तपस्वी, डी.ए.वी. के प्रथम प्राचार्य महात्मा हंसराज जी के जन्म महोत्सव के उपलक्ष्य में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा अप्रैल मास के चौथे सप्ताह में अपने मुख पत्र 'आर्यजगत्' साप्ताहिक का 'महात्मा हंसराज विशेषांक' प्रकाशित करेगी। अतः 29 मार्च 2026 से 25 अप्रैल 2026 तक 'आर्य जगत्' का एक संयुक्त विशेषांक प्रकाशित होगा जिस कारण 29 मार्च से 4 अप्रैल, 5 अप्रैल से 11 अप्रैल व 12 अप्रैल से 18 अप्रैल 2026 के अंक प्रकाशित नहीं होंगें। –सम्पादक

आर्य समाज और राष्ट्रीय आन्दोलन

● इन्द्र विद्यावाचस्पति

पूरा स्वराज्य कल्पना से परे– यह बात अब निर्विवाद रूप से मानी जाती रही है कि राष्ट्रीयता के जिस महायज्ञ की पूर्ति महात्मा गान्धी ने की, उसका प्रारम्भ महर्षि दयानन्द ने किया था। महात्मा गान्धी ने भारत में लौट कर देश की राजनीति की बागडोर 1918–1919 में सँभाली थी। उससे पहले की हमारे देश की राजनीति ऐसी नहीं थी कि उससे नाम दिया जा सके। जिन भारतवासियों ने 1885 में बम्बई में राष्ट्रीय महासभा की स्थापना की थी, वे देशभक्त अवश्य थे, परन्तु उनकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा सरकारी नौकरियों या ओहदों तक परिमित थी। वे लोग मानते थे कि यह परमात्मा की कृपा है कि भारत पर स्वाधीनताप्रेमी सुशिक्षित अंग्रेज़ जाति का आधिपत्य हुआ है। **पूरा स्वराज्य उनकी कल्पना से बाहर था।** उधर महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा था–"कोई कितना ही कहे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत–मतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता–पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशी राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।"

{कोई कितना भी ऋषि दयानन्द का निन्दक और आर्यसमाज का घोर विरोधी क्यों न हो महर्षि दयानन्द के स्वराज्य विषयक इस अद्भुत वचन को उस युग में अपने विषय का सबसे पहला और अद्वितीय विचार मानेगा। ऋषि दयानन्द ने जिस निडरता से पराधीनता की काली रात्रि में देश को यह घुट्टी पिलाई उसका भी कोई दूसरा उदाहरण न मिलेगा। –'जिज्ञासु'}

यदि केवल सिद्धान्त की दृष्टि से भी देखें, तो महर्षि की यह स्थापना बहुत गहरे राजनीतिक सत्य से भरी हुई है। महर्षि के ग्रन्थों में राजनीतिक स्वाधीनता और स्वराज्य की भावना ओतप्रोत है। महर्षि कोई राजनीतिक कार्यकर्त्ता नहीं थे। वे धर्म के प्रचारक और सुधारक थे। राजधर्म भी उनकी दृष्टि में धर्म का ही एक भाग था। राजधर्म की व्याख्या करते हुए महर्षि ने उन सच्चाइयों को निर्भय और निष्कपट रूप से प्रकट किया तो उस समय की सरकार तो क्या, देश के साधारण राजनीतिक नेताओं के लिए अपरिचित–सी थी। यदि हम राजनीति के प्रकरण में और प्रार्थनाओं में महर्षि के द्वारा प्रकाशित मन्तव्यों को सरल संक्षेप करना चाहें, तो वे चार शीर्षकों के नीचे आ जाते हैं– (1) स्वधर्म, (2) स्वराज्य, (3) स्वदेशी, (4) और स्वभाषा। आर्यसमाज–रूपी भवन का निर्माण महर्षि दयानन्द के वेद–भाष्य, सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों की नींव पर हुआ था। उस समय के आर्यजन हर प्रकार की प्रेरणा ऋषि के वाक्यों से ही लेते थे। यह स्वाभाविक ही था कि सामान्य रूप से उस समय के आर्यसमाजी स्वधर्म के साथ ही साथ स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा के भी भक्त होते। प्रथम युग से ही आर्य जनता में गहरी देशभक्ति की भावना पाई जाती थी।

प्रारम्भ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का आदर्श बहुत ऊँचा नहीं था, तो भी उसमें विदेशी राज्य के प्रति विरोध की जो भावना छुपी हुई थी, उसका आर्यसमाजियों के हृदयों पर अनुकूल प्रभाव हुआ। 1888 में इलाहाबाद में कांग्रेस का चौथा अधिवेशन हुआ, उसमें लाला लाजपतराय जी और ला. मुरलीधर जी **{यह लाला मुरलीधर कोई आर्यसमाजी सज्जन नहीं थे। यह राय मुरलीधर नाम के वकील थे। आर्यसमाजी लाला मुरलीधर और थे। 'जिज्ञासु'}** आदि कई प्रमुख आर्यसमाजी प्रतिनिधि बन कर सम्मिलित हुए और पाँच वर्ष पीछे जब यह निश्चय हुआ कि कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में किया जाये, तो जिन महानुभावों ने स्वागत की व्यवस्था में विशेष भाग लिया उनमें राय मूलराज और बख्शी जैसीराम जैसे प्रतिष्ठित आर्यसमाजी भी थे। देशभक्ति एक आर्यसमाजी बालक को जन्म–घुट्टी में पिलाई जाती थी। फलतः उसका झुकाव प्रत्येक ऐसी संस्था की ओर रहता था जिसका लक्ष्य अपने देश को विदेशियों के बन्धन से स्वतन्त्र कराना हो।

इस प्रसंग में यह बतला देना अत्यन्त आवश्यक है कि यद्यपि कुछ प्रमुख आर्यसमाजी नेताओं ने लाहौर की कांग्रेस में भाग लिया परन्तु सामान्य रूप से अधिकतर आर्यसमाजी उससे अलग रहे, इसके कारणों का विवेचन अपनी आत्मकथा में लाला लाजपतराय जी ने इस प्रकार किया है :

"सन् 88 ई. के बाद कांग्रेस की ओर से मेरी उदासीनता या शिथिलता का कारण मेरे आर्यसमाजी मित्रों की सम्मतियाँ थीं। सन् 89 ई. के बाद कुछ समय के लिए मुझे एक प्रतिष्ठित मित्र की संगत से लाभ उठाने का अवसर मिला। वे कांग्रेस के घोर विरोधी थे, जिसके कारण यह थे :

"(1) कांग्रेस की नींव कुछ अंग्रेज़ों ने डाली है और अंग्रेज़ पक्के देश–हितैषी हैं, इसलिए **यह कभी संभव नहीं है कि कांग्रेस भारतवर्ष के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हो।** भारतवर्ष के शासन से अंग्रेज़ों को और उनके देश को बहुमूल्य लाभ प्राप्त है। यह हो नहीं सकता कि वह प्रसन्नता से इस देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता दे दें। उन्होंने इस डर से कि कहीं शिक्षित हिन्दुस्तानी कोई गहरा राजनीतिक आन्दोलन इंग्लैण्ड के विरुद्ध न उठावें, हिन्दुस्तान के शिक्षित समुदाय को यह काम सौंप दिया कि वे सालभर में दो–तीन व्याख्यान देकर और समाचार पत्रों में अपनी प्रशंसा पढ़कर चित्त प्रसन्न कर लें।"

"उन दिनों ये सज्जन प्रत्येक अंग्रेज़ को भारतवर्ष का शत्रु समझते थे और इसलिए उनको इसमें कुछ सन्देह नहीं था कि कुछ अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तानियों को एक हानिकारक काम देने के लिए कांग्रेस बनाई है। वे कांग्रेस को न केवल व्यर्थ, किन्तु भारतवर्ष के लिए हानिकारक समझते थे। उनकी यह सम्मति थी कि हिन्दुस्तानियों को शिक्षा से, स्वदेशी के प्रचार से और गुप्त रीति से हथियारों के प्रयोग से अपने आपको बलवान् बनाना चाहिए और उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब उनको अंग्रेज़ों को निकालने के लिए पर्याप्त शक्ति और जनसमूह प्राप्त हो जावे। वे कांग्रेस के स्थान पर गुप्त काम के पक्ष में थे।

"(2) उक्त सज्जन को हिन्दू–मुसलमानों के मेल में विश्वास न था। उनका विचार था कि हिन्दू मुसलमानों के मेल का उद्योग हिन्दुओं के लिए हानिकारक है। हिन्दुओं में एकदिली, धार्मिक उत्साह और धार्मिक संगठन बिलकुल नहीं है। मुसलमानों में ये सब बातें बहुत हैं, इसलिए हिन्दू–मुसलमानों के मेल में जीत सदा मुसलमानों की ही होगी और क्योंकि अभी मुसलमानों की राजनीतिक शक्ति अफगानिस्तान और टर्की आदि में उपस्थित है इसलिए हिन्दू–मुसलमानों के मेल और उद्योग का यह फल होगा कि मुसलमान राजनीतिक रीति से और भी अधिक बलवान् हो जावेंगे। उनकी सम्मति में इस बात की आवश्यकता थी कि हिन्दुओं को पहले बलवान् किया जावे, उनके भीतर जातीय उत्साह उत्पन्न किया जावे, उनको एकता के मार्ग बताये जावें। उनका विचार था कि कांग्रेस का आन्दोलन हिन्दुओं को हिन्दू–सुधार और हिन्दू–एकता के काम से हटाकर एक मूर्खता के काम में डाल देगा और इससे हानि हिन्दुओं को होगी। उनका यह विचार था कि राजनीतिक आन्दोलन से अंग्रेज़ों के दिलों में हिन्दुओं की ओर दुर्भाव उत्पन्न हो जावेंगे और वे न केवल हिन्दुओं के मार्ग में रुकावट डालेंगे, परन्तु उनको कई प्रकार की हानियाँ पहुँचायेंगे।

"साधारण तौर पर लाहौर के आर्यसमाजी नेताओं की यही राय थी। कुछ तो यह समझते थे कि आर्यसमाजियों को अपना सारा समय आर्यसमाज को देना चाहिए और आर्यसमाज से बाहर कोई सार्वजनिक काम नहीं करना चाहिए। कुछ का यह भी विचार था कि राजनीति में आर्यसमाजियों के अधिक भाग लेने से सरकार आर्यसमाज से बिगड़ जायेगी और आर्यसमाज के काम में विघ्न डालेगी।"

लाला जी ने परिस्थिति का जो विवेचन किया है वह मुख्य रूप से आर्यसमाज के उस भाग से सम्बन्ध रखता है, जिसे कॉलेज पार्टी के नाम से पुकारा जाता था। महात्मा पार्टी की मनोवृत्ति में कुछ भेद था। प्रचलित राजनीति से उदासीन तो वे भी थे, परन्तु उनकी विचार परम्परा भिन्न थी। **सद्धर्म प्रचारक पत्र को हम उस पार्टी का षोडशकला–सम्पन्न प्रतिनिधि मान सकते हैं।** उसके सम्पादक महात्मा मुन्शीराम जी सम्पादकीय स्तम्भ में

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

कोई कितना भी ऋषि दयानन्द का निन्दक और आर्यसमाज का घोर विरोधी क्यों न हो महर्षि दयानन्द के स्वराज्य विषयक इस अद्भुत वचन को उस युग में अपने विषय का सबसे पहला और अद्वितीय विचार मानेगा। ऋषि दयानन्द ने जिस निडरता से पराधीनता की काली रात्रि में देश को यह घुट्टी पिलाई उसका भी कोई दूसरा उदाहरण न मिलेगा। –'जिज्ञासु'

दुःखदायी दुर्व्यसन

● पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

दुर्व्यसन दो प्रकार के होते हैं–एक व्यक्तिगत और दूसरे जातीय। जातीय दुर्व्यसन सब से ज्यादा हानिकारक होते हैं क्योंकि उनसे समस्त जाति को कष्ट पहुँचता है।

बहुत से दुर्व्यसन ऐसे हैं कि इनको कोई दुर्व्यसन ही नहीं मानता। उससे कष्ट तो सभी उठाते हैं परन्तु पता नहीं चलता कि कष्ट का कारण क्या है ?

विवाह के समय अधिक खर्च करना इसी प्रकार का एक दुर्व्यसन है यह दुर्व्यसन हिन्दू जाति में बहुत है और इसी दुर्व्यसन के कारण बड़े–बड़े हिन्दू घराने तबाह हो गये फिर भी लोग इनसे शिक्षा नहीं लेते।

हिन्दुओं की औसत आमदनी बहुत कम है परन्तु फिर भी इनको अपने लड़के लड़कियों के विवाह के लिये धन जोड़ना पड़ता है इससे शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक तीनों प्रकार की हानियाँ होती हैं।

शारीरिक

थोड़ी आमदनी खाने भर को काफी नहीं होती, फिर भी उसमें से कुछ बचाना पड़ता है। इसलिये न माँ बाप खा सकते हैं और न वे अपनी सन्तान को ही खिला सकते हैं। जब माँ बाप अपने खाने में कमी करते हैं तो उनके शरीर दुर्बल हो जाते हैं और शरीर दुर्बल होने से उनकी आयु भी कम हो जाती है और वे अधिक धन कमाने योग्य नहीं रहते। वे अपनी सन्तान के विवाह के लिये धन जोड़ते हैं परन्तु उनको अच्छा खाना नहीं दे सकते क्योंकि इतना धन कहाँ कि खा लें और विवाह के लिये भी जोड़ सकें। इसलिये सन्तान कमजोर हो जाती है। लड़के तो कुछ खा भी लेते हैं परन्तु लड़कियों को बहुत कम खाने को मिलता है। माँ बाप इनकी शादी की चिन्ता में निमग्न रहते हैं और समझदार लड़कियाँ अपने माँ बाप को चिन्तित देखकर स्वयं भी चिन्ता के सागर में डूब जाती हैं और उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है क्योंकिः

चिताचिंता द्वयोर्मध्ये चिन्तैव गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवं चिंता दहति सजीवकम्।

चिता तो मुर्दे को जलाती है परन्तु चिंता जीवित को भी जला देती है। इसलिये चिन्ता बड़ी भयानक चीज है।

आत्मिक

विवाहों में बहुत खर्च करने से आत्मिक हानि यह होती है कि माँ बाप सन्तान की शिक्षा पर इतना धन व्यय नहीं कर सकते जितना विवाह पर। हमने ऐसे बहुत से लोगों को देखा है जो 2) मासिक फीस नहीं दे सकते परन्तु विवाह में 1000) अवश्य उठा देते हैं। दो रुपये मासिक के हिसाब से साल भर में 24 रुपये और 8 साल में 162) व्यय होता है अर्थात् जो रुपया पाँच लड़कों को मैट्रिक तक की पूरी फीस के लिये चाहिये वह केवल एक लड़के के विवाह में दो दिन में व्यय हो जाता है। फिर लोग नाक सिकोड़ते हैं "अजी कुछ नहीं किया। बड़ा कंजूस है। हलवे में मीठा कम था ? कचौड़ियाँ तेल की थीं। आतिशबाजी बहुत फीकी थी। बाजे वाले अच्छे नहीं थे।" लड़कियों के लिये तो कोई मासिक फीस देना भी पसन्द नहीं करता। "हाय विवाह कैसे होगा।" यही चिन्ता रहती है। जहाँ कन्या पाठशाला में फीस माँगी गई, वहाँ लड़की को विद्यालयों से हटा लेते हैं। जब शिक्षा नहीं तो भला आत्मिक उन्नति कैसे हो सकती है। शिक्षा के न होने का मुख्य कारण विवाहों का खर्च है।

सामाजिक

इससे सामाजिक हानि भी बहुत होती है। समाज है लोगों का समूह ! यदि लोग धनवान हैं तो समाज भी धनवान होगा यदि लोग मूर्ख हैं तो समाज भी मूर्ख होगा। जब विवाहों में खर्च करने से लोग निर्धन और अशिक्षित हो जाते हैं तो समस्त समाज अशिक्षित कहलाता है और दूसरी जातियाँ इस जाति का तिरस्कार करती हैं। जाति के निर्बल होते ही अन्य जातियाँ उसको कुचलने का प्रयत्न करती हैं। इस प्रकार जाति की रही सही शक्ति भी नष्ट हो जाती है और वह शीघ्र मर जाती है। हिन्दुओं के विवाह में क्या होता है ? सुनिये

(1) नाच – इसमें रंडियाँ बहुत सा रुपया ले जाती हैं और व्यभिचार की उन्नति होती है।

(2) भाँड़ – यह तो रंडियों के साथी ही ठहरे ! शोक है कि हिन्दुओं का रुपया इस प्रकार दूसरी जाति के नीच लोगों के हाथ में पड़ता है।

(3) – यह भी प्रायः मुसलमान ही होते हैं और अहिंसक लालाजी के रुपये से खूब मांस उड़ाते हैं।

(4) आतिशबाजी –इनका तो आग से खेल ही ठहरा। परन्तु यह अपने घर की एक कौड़ी नहीं फूँकते। लालाजी के रुपयों में ही आग देते हैं। लालाजी ऐसे मूर्ख कि घर फूँक तमाशा देखें। जो इन्हीं के घर में आग दे उसी की बड़ाई करें "वाह क्या अच्छी अतिशबाजी है ? कैसी चर्खी है ? वाह ! वाह ! आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे इन्हीं को कहते हैं।"

फिर रहे और तमाशाई ! इनका तो कहना ही क्या है। अगर लालाजी ने रंडी न बुलाई या उनके सिर पर धूरगोला न छूटा तो यह लोग नाक में दम कर लेते हैं "एक ही लड़का था फिर भी लालाजी कंजूसी कर गये। ऐसे अवसर बार बार थोड़े ही आते हैं ?"

इस प्रकार हिन्दुओं की बड़ी दुर्गति हो रही है। वह कमाते तो हैं एक–एक कौड़ी करके और एक ही विवाह में सारी उम्र की कमाई फूँक देते हैं। दो दिन की वाह ! वाह ! हो जाती है, बहुत सा ऋण हो जाता है, जायदाद नीलाम हो जाती है, दाने–दाने को तरसते हैं जो लोग लालाजी की वाह वाह करते थे वही उनको मूर्ख बताते हैं और उनके मुंह पर थूकते हैं।

हिन्दुओं के विवाह में जितना रुपया व्यय होता है उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। कल्पना कीजिये कि लड़के के बाप का 1000) लगा तो लड़की के बाप का भी 2000) लगा होगा। इस प्रकार 3000) हुये। लड़के और लड़की के मामा जो 'भात' लाते हैं उनको भी बहुत सा खर्च करना पड़ता है फिर रिश्तेदार और इष्ट मित्र रेल आदि में व्यय करते हैं इस प्रकार सब मिलकर बहुत हो जाता है। यह सब किस लिये ? केवल एक दिन के लिये। यदि यही उत्साह धर्म या जाति उन्नति या परोपकार के लिये हो तो भी ठीक है परन्तु ऐसा नहीं होता। अनाथ भूखे मरते रहें, विधवायें दूसरी जाति के हाथ पड़ती रहें, स्कूल और पाठशालायें धन न होने से भले ही बन्द हो जायें परन्तु विवाह के खर्च में कमी नहीं हो सकती।

इसका क्या इलाज है ? सुनिये :–

(1) झूठी बदनामी से मत डरो।

(2) दहेज कभी मत लो।

(3) विवाह में बहुत आदमी मत बुलाओ।

(4) कोई ऐसी रस्म न करो जिसमें तुम्हारे गरीब रिश्तेदारों को कर्ज लेना पड़े।

(5) नाच, भाँड, आतिशबाजी कभी मत ले जाओ।

(6) अगर तुम्हारे पास रुपया हो तो अनाथालय, विद्यालय या अच्छे कामों में दान दे दो। परन्तु धन होते हुये भी गुण्डों को मत दो।

(7) अगर धन नहीं है तो कर्ज मत लो। केवल लड़के–लड़की और पण्डित जी को बुला कर विवाह कर दो।

(8) दावतों में अपनी शक्ति से अधिक खर्च न करो। क्या तुमने नहीं सुना "Fools make feasts and wise men eat them" अर्थात् "मूर्ख लोग खिलाते हैं और चतुर लोग खाते हैं।"

विवाह संस्कार का गौरव वर–वधू की योग्यता, बल तथा धर्म परायणता में है न कि लड्डू और कचौड़ियों के स्वाद या बाजे गाजे में। यदि तुम अपना रुपया फूँक दोगे तो जिनके विवाह में खुशी मना रहे हो वह क्या खायेंगे ? भले आदमियो, कुछ इनके लिये भी तो छोड़ो!

गंगा प्रसाद ट्रैक्ट विभाग
आर्य समान चौक, प्रयाग
द्वारा 1974 में प्रकाशित द्वितीय ....
का 10वाँ ट्रैक्ट

☞ पृष्ठ 06 का शेष

उत्पत्ति का विज्ञान ...

रहता है। इससे आत्मा मुक्ति में सुख को भोगता है) तीसरा–कारण, जिसमें सुषुप्ति अर्थात गाढ़ निद्रा होती है, वह प्रकृति रूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिये एक है। तुरीयशरीर–वह कहलाता है जिसमें समाधि से परमात्मा के आनन्द स्वरूप में जीवात्मा मग्न होते हैं। इसी समाधि संस्कार जन्य शुद्ध शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है।

इन सब कोश अवस्थाओं से आत्मा पृथक् है, क्योंकि यह सबको विदित है कि आत्मा अवस्थाओं से पृथक् है क्योंकि जब मृत्यु होती है तब सब कोई कहते हैं कि आत्मा निकल गया। यही जीवात्मा सबका, प्रेरक, सबका धर्त्ता, साक्षी, कर्त्ता और (शरीर के सम्बन्ध से) भोक्ता कहाता है।

बस इतना ही यह सारा संसार है–परन्तु अव्यक्त प्रकृति से लेकर मन इत्यादि इन्द्रियों तक, यह सबके सब जड़ ही हैं, पर जड़ तो स्वयं कुछ नहीं कर सकता। इस प्रकृति की विकृति और अव्यक्त को व्यक्त करने वाला एक चेतन–तत्व आत्मा है। सारी सृष्टि के अन्दर तथा बाहर भी जो ओत–प्रोत तत्व है, उसे ब्रह्मतत्व या परमात्मा कहते हैं और जो शरीरधारी प्राणियों का अधिष्ठाता है उसे आत्म–तत्व या जीवात्मा कहते हैं।

अतः जिस प्रकार शरीर की क्रिया जीवात्मा की प्रेरक शक्ति द्वारा होती है, उसी प्रकार जड़ सृष्टि में हलचल परमात्मा की उत्पादक शक्ति द्वारा होती है।

क्रमशः

मु. पो. मुरारई, जिला–वीरभूम
(पश्चिम बंगाल)

☞ पृष्ठ 05 का शेष

ईश्वर तेरी मर्ज़ी ...

क्या देर लगनी थी! नगर के जिस कोने में कोई आर्य भाई रहता था, वहीं यह खबर बिजली की तरह पहुँच गईं जिसने सुना, वही अवाक् रह गया। मानो लोगों को विश्वास नहीं हो रहा था। विश्वास हो भी कैसे ? बिन बादल तुषारपात हुआ है। प्रातःकाल ही सूर्यास्त हो गया और गूढ़ तिमिर ने सर्वत्र अधिकार जमा लिया है। नौ बजे से पूर्व ही पाँच–छह सौ व्यक्ति पण्डित जी के अन्तिम दर्शनार्थ पहुँच गए। प्रत्येक जिह्वा पर उनके गुणों की चर्चा थी। उनकी योग्यता, विद्वत्ता, सिद्धान्तप्रियता, अद्भुत वक्तृत्वकला एवं साधु स्वभाव को याद कर आँखों से गंगा–यमुना की धारा बह रही थी। कई तो इस महान् क्षति का अनुमान कर पत्थर की भाँति सुन्न रह गए। वाणी एक भी शब्द न कह पाई। जिससे आशाएँ थीं, वही न रहा, केवल आर्य ही नहीं, अपितु हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब शोकनिमग्न थे। वृद्धा माता का करुण क्रन्दन सुना न जा रहा था। उसका यही आँखों का तारा था, बुढ़ापे का सहारा था, अनेक कष्ट सहकर उसे पाया था। वैसे भी पतिविहीना स्त्री का सुख पुत्र में केन्द्रित हो जाता है। बेटा कितना ही निकम्मा हो, माँ को प्यारा होता है, पर जिस माता का पुत्र इतना योग्य, प्रतिष्ठित तथा होनहार हो, उसके दुःख का अनुमान लगाया ही नहीं जा सकता। माँ चीख–चीखकर पुकार रही थी 'ऐ मेरे सच्चे साधू! ओ भोले–भाले साफ दिल बैरागी ! ऐ वेद–मन्त्रों का उच्चारण करने वाले! ऐ आर्यों के उपदेशक! तू आज किस तरह सो रहा है? देख, तेरा उपदेश सुनने के लिए लोग बाहर तेरे इंतजार में हैं। जाग, उठ, उनसे बात कर।' यही स्थिति लाला साईंदास की थी। वे रो–रो कर कह रहे थे अच्छा होता उस होनहार की जगह में मर जाता। यह तो मेरी मौत का समय था। यह होनहार मेरे हाथों में चल दिया।

शोक के कारण लाहौर के सारे कॉलेज बंद कर दिए गए। कचहरियाँ बंद रहीं। पंजाब विश्वविद्यालय ने भी शोक मनाया। सर्वत्र उदासी छा गई। लगभग दस बजे पार्थिव शरीर को श्मशान भूमि ले जाने की तैयारी होने लगी। कई भक्तों ने पण्डित जी का महानिद्रा की अवस्था में चित्र लेने का सुझाव दिया। पर चरित्र के पुजारियों ने चित्र की आवश्यकता न समझी। जनता ने आग्रह किया कि जब गुरुदत्त का पार्थिव शरीर अग्नि को भेंट किया जाए, तब उनका समस्त जनसमूह के साथ चित्र ले लिया जाए। इस सुझाव पर किसी को आपत्ति न थी। फिर भी चित्र न लिया गया क्योंकि इसे भी व्यर्थ समझा गया। वैसे पण्डित जी का एक चित्र पहले ही विद्यमान था।

साढ़े दस बजे अन्तिम यात्रा आरम्भ हुई यह रविवार का दिन नहीं था, तो भी लोग सहस्रों की संख्या में पधारे। **{उस दिन राजकीय कॉलेज में परीक्षा थी, अतः पूरा प्रयत्न किया गया कि परीक्षा समाप्त होने तक परीक्षार्थियों तक यह शोक समाचार न पहुँचे ताकि उनकी परीक्षा में विघ्न न पड़े (द्रष्टव्यः निहालचन्द भण्डारी, उन्नीसवीं सदी का सच्चा शहीद, पृष्ठ 131)}** कई अंग्रेज़ों ने, जो पण्डित जी के भाषणों से प्रभावित थे, अपने कर्मचारियों को अन्तिम यात्रा में सम्मिलित होने के लिए भेज दिया। आगे–आगे आर्य पुरुष तथा डी.ए.वी. छात्रालय के विद्यार्थी वेदमन्त्र तथा ईश्वरभक्ति के गीत गाते जा रहे थे। शोकाकुल श्रद्धालु जोड़ मोरी, शाहआलमी बाजार और हीरा मण्डी में से निकल कर गए। भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। दोनों ओर दुकानों पर लोग खड़े होकर अपनी श्रद्धा व्यक्त कर रहे थे। मकानों की छतों व खिड़कियों से लगातार पुष्पवर्षा हो रही थी। प्रत्येक नर–नारी शोकविह्वल था। हर जिह्वा पर उस युवक के गुणों की चर्चा थी। छब्बीस वर्ष की अल्पायु में सदैव के लिए बिछोह शूल की भाँति चुभ रहा था। अपने सर्वस्व को कंधों पर उठाए तथा विलाप करता हुआ जन समूह कई स्थानों पर ठहरता हुआ लगभग एक बजे श्मशान भूमि पहुँचा। फिर वृद्धा माता, धर्मपत्नी एवं सभी नर–नारियों ने पण्डित गुरुदत्त जी के अन्तिम दर्शन किए।

वैदिक विधि के अनुसार वेदी बनाई गई। सात फुट लम्बा, लगभग पाँच फुट चौड़ा और दो फुट गहरा ढलवाँ गड्ढ़ा खोदा गया। गोबर से लीप कर आसपास पानी छिड़ककर लकड़ियाँ चिनी गईं। चिता पर पाँच सेर कपूर डालकर आग दी गई। सवा मन घी (अन्तिम समय में पण्डित जी का भार इतना रह गया था।), एक मन चन्दन, प्रति सेर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर, प्रति मन घी में एक सेर अगर, तगर, चन्दन का बूरा, बालछड़, गिलोय, इन्द्रजौ, पाँचों मेवे (नारियल, किशमिश, छुहारे आदि) तथा शहद इत्यादि डाले गए। घी गर्म कर छाना गया। ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित विधि से अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। **{द्रष्टव्यः ऋषि दयानन्द संस्कार विधि अन्त्येष्टि प्रकरणम् भारत सुदशा प्रवर्त्तक, अप्रैल 1890}** लगभग साठ रुपये की सामग्री लगाई गई। देखते–ही–देखते पंच महाभूत अपने–अपने भूतों में मिल गए। कल तक जिसके नाम से रौनक थी, आज उसके दर्शन भी सम्भव न रहे। महात्मा हंसराज ने दिवंगत आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना की। फिर शोकाकुल भीड़ स्नान कर रोती धोती अपने घरों की ओर चल पड़ी।

गुरुदत्त की अस्थियाँ एवं भस्म 22 मार्च प्रातः रावी में प्रवाहित कर दी गईं जो उन्हें उनकी जन्म भूमि से मिलाने दौड़ पड़ी। घर पर दस दिन यज्ञ तथा उपनिषद् का पाठ होता रहा और उनकी पुण्य स्मृति आर्यसमाज की अमर रजनीगन्धा बन गई।

लेखक की पुस्तक
'पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी' से साभार

☞ पृष्ठ 07 का शेष

आर्य समाज और ...

राजनीति के सम्बन्ध में प्रायः सम्मति देते रहते थे।

{पं. इन्द्रजी का यह कथन अत्यन्त मार्मिक व मौलिक है। यद्यपि इस "षोडशकला कला–सम्पन्न प्रतिनिधि" के एक–एक अङ्क का संकलन करके एक ग्रन्थ बनाने का विचार किसी आर्य को न सूझा तथापि इस सेवक ने 'जीवन यात्रा स्वामी श्रद्धानन्द' ग्रन्थ में ऐसे कई उद्धरण दिये हैं। आज जीवन की साँझ में इस टिप्पणी को लिखते हुए ऐसी एक पुस्तक लिखने का मन तो बनाया है, देखें आगे क्या होता है? – 'जिज्ञासु'}

उनकी आलोचना में कांग्रेस के हिन्दू–विरोधी होने की चर्चा नहीं होती थी क्योंकि महात्मा पार्टी के लोग हिन्दू शब्द को ही पसन्द नहीं करते थे। वे अपने को आर्य कहते थे। उन लोगों का विचार था कि मुसलमान विजेताओं ने हिन्दू अर्थात् गुलाम समझ कर भारतवासियों को इस नाम से पुकारना शुरु किया था। इस विचारधारा के कारण उनमें साम्प्रदायिकता की मात्रा कम थी। वे तत्कालीन राजनीति के प्रति अपनी उपेक्षा का यह कारण बतलाते थे कि कांग्रेस की नीति में धार्मिकता का अभाव था। उनका प्रस्तावों, व्याख्यानों और डेपुटेशनों पर विश्वास नहीं था और न ही वे आतंकवाद पर भरोसा रखते थे। **कांग्रेस के प्रति उनकी उपेक्षा का मूल कारण एक अस्पष्ट परन्तु गहरा आदर्शवाद था।** एक अंग्रेज़ ने लिखा था–"किसी भी आर्यसमाजी की खाल को खुरच कर देखो तो अन्दर छुपा हुआ क्रान्तिकारी देशभक्त लिखा हुआ दिखाई देगा।" वह बात सच थी। जो व्यक्ति महर्षि दयानन्द के उपदेशामृत से पला हो वह दासता से घृणा करे और स्वराज्य की अभिलाषा रखे, यह तो स्वाभाविक ही था, तो भी उस समय कुछ व्यक्तियों को छोड़कर आर्यसमाज के सभासदों ने कांग्रेस के वाचिक आन्दोलनों में पूरा भाग नहीं लिया। इसके अनेक कारण थे। लम्बे अनुभव की दृष्टि से तो वे अनुचित भी नहीं मालूम होते। समय आया जब कांग्रेस में आदर्शवाद ने प्रवेश किया और इतिहास साक्षी है कि इस समय स्वाधीनता के संग्राम में आर्यसमाजी किसी से पीछे नहीं रहे।

इस प्रसंग में महर्षि के निकटतम शिष्य श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा की चर्चा करना अत्यन्त आवश्यक है। श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा विलायत जाने से पहले महर्षि के विचारों से पूरी तरह प्रभावित हो चुके थे। उन्हें विदेश जाने की प्रेरणा मुख्य रूप से महर्षि से ही मिली थी। लन्दन जाकर उन्होंने आर्यसमाज के विचारों का प्रचार आरंभ कर दिया था। लन्दन में आर्यसमाज का सूत्रपात उन्होंने किया। 1905 में उन्होंने **'इण्डिया हाउस'** नाम के भवन में **'होमरूल सोसायटी'** की स्थापना की। सोसायटी के सभापति वे स्वयं थे। आपने **'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट'** नाम का एक पत्र भी निकाला जो राजनीति में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचारक था। इसके एक अंक का मूल्य एक आना रखा गया था। वर्मा जी के चारों ओर शीघ्र ही देशभक्त भारतीय नौजवानों का एक बड़ा समुदाय इकट्ठा हो गया, तब अंग्रेज़ी सरकार ने घबराकर उन्हें तंग करना शुरु किया। वे लन्दन को छोड़कर पेरिस चले गए जहाँ से वे यूरोप में रहने वाले भारतीय छात्रों को भरपूर आर्थिक सहायता देने के अतिरिक्त क्रान्तिकारी दलों का संचालन भी करते रहे। **उन्हें हम भारत की तत्कालीन राजनीति को आर्यसमाज की देन कह सकते हैं।**

आर्यसमाज का इतिहास भाग–1
के 'आर्यसमाज और देश की अन्य संस्थाओं' से साभार

पत्र/कविता

महिला सशक्तिकरण

भारत विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है, जिसकी पहचान उसकी समृद्ध ज्ञान परम्परा से होती है। वेद, उपनिषद, आयुर्वेद, गणित, खगोल, दर्शन और साहित्य ने न केवल भारतीय समाज की नींव रखी बल्कि विश्व को भी दिशा प्रदान की। भारतीय ज्ञान परम्परा केवल ग्रन्थों और शास्त्रों तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसमें सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक मूल्य और शिक्षा प्रणाली भी शामिल हैं। इस परम्परा में महिलाएँ सदैव ज्ञान–विज्ञान, आध्यात्मिकता और साहित्य की सहभागी रही हैं। इस ज्ञान परम्परा में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। समय के साथ उनकी स्थिति और अधिकारों में परिवर्तन आया। प्राचीन काल में जहाँ महिलाएँ शिक्षा और दार्शनिक विमर्श में सक्रिय थीं, वहीं मध्यकाल में उनकी स्थिति कमज़ोर हुई। आधुनिक युग में सामाजिक सुधार आंदोलनों और स्वतंत्रता संग्राम ने महिला सशक्तिकरण को नया आधार दिया।

भारतीय ज्ञान परम्परा ने महिलाओं को सदैव समाज का अभिन्न हिस्सा माना है। यद्यपि समय के साथ उनकी स्थिति में उतार–चढ़ाव आया, परन्तु प्राचीन काल की विदुषी से लेकर आधुनिक काल की वैज्ञानिक और नेत्री तक, महिलाओं ने हर युग में अपनी पहचान बनाई। आज आवश्यकता है कि परम्परागत ज्ञान और आधुनिक शिक्षा का संतुलन स्थापित करके महिलाओं को सम्पूर्ण सशक्तिकरण प्रदान किया जाए। तभी भारत की ज्ञान परम्परा पूर्ण और जीवंत रह सकेगी।

डॉ. ललिता गोयल
किला भवन, इन्दौर

थोड़े बहुत राम बन जाओ

घर में घुस कर रावण मारा।
साहस अपराजेय तुम्हारा।

मर्यादा में राम सरीखा।
जग में सुना न कोई दीखा।

राम न होते तो क्या होता।
न्याय रात दिन आंसू बोता

राम राज्य का भाई चारा।
उदाहरण है जग में न्यारा।

दीन हीन को गले लगाया।
अनुपम कौशल्या का जाया।

ऋषि–मुनियों का मान बढ़ाया।
भू पर ऐसा वीर न आया।

प्रण माना प्राणों से प्यारा।
हार गया तुम से ध्रुव तारा।

जब तक है सरयू में पानी।
खत्म न होगी राम कहानी।

वामांगी सोहे माँ सीता।
राम रहे संयम की गीता।

पूरी धरती रही अभीता।
राम लखन सब के मन मीता।

पुरखों से बस आशिष मांगो।
अपने बल पर सागर लांघो।

मन मन्दिर में राम बसाओ।
थोड़े बहुत राम बन जाओ।

केवल उनके गीत न गाओ।
न्यूनाधिक रामत्व दिखाओ।

सभी 'मनीषी' निज मन खोलो।
सत्य पराक्रम की जय बोलो।

प्रो. डॉ सारस्वत मोहन 'मनीषी'
डी–801, बैस्टेक पार्क व्यू संस्कृति एपार्टमेंट,
सैक्टर –92, नया गुरुग्राम हरियाणा–122505
मो. 9810835335

मधुमेह

दूषित जीवन शैली से मधुमेह जैसी बीमारियाँ अब विश्व के समस्त नागारिकों को अपनी गिरफ्त में तेज़ी से लपेट रही हैं जो अत्यन्त घातक है।

आयुर्वेद के विशेषज्ञों के अनुसार यदि मधुमेह से बचने का प्रयास किया जाये तो मधुमेह पर विजय पायी जा सकती है।

प्रातः सूर्य नमस्कार को जीवन शैली में शामिल करें।

सायं काल का भोजन सूर्य छिपने से पहले करें। जिससे गुरुत्वाकर्षण शक्ति आपके भोजन को पचाने में सहयोग करे।

आयुर्वेद विशेषज्ञों के अनुसार बिजी सा–उप, इस मधुनाशनी वटी, आरोग्य वर्ध वटी, चन्द्रप्रभावटी त्रिवांग भस्म, गिलोय वटी का सेवन सहायक हो सकता है।

आयुर्वेद चित्सिक का परामर्श श्रेष्ठ लाभ देगा।

कृष्ण मोहन गोयल
113 बाजार कोट, अमरोहा

****

पपीता

पपीते के फायदे

क्या आपने कभी सोचा है कि रोज का साधारण सा फल – पपीता आपकी सेहत के लिए कितना फायदेमंद हो सकता है?

यह फल न सिर्फ आपकी पाचन क्रिया को बेहतर बनाता है, बल्कि यह डायबिटीज से लेकर त्वचा, वजन, आंखों की सेहत और यहाँ तक की कैंसर से सुरक्षा में भी भूमिका निभाता है। आइए जानते हैं पपीता खाने के ढेरों फायदे, डॉक्टरों की राय और जरूरी सावधानियाँ।

पपीता क्या है?

पपीता एक ट्रॉपिकल फल है जो मुख्यतः भारत, थाईलैंड और मैक्सिको जैसे देशों में उगता है। इसमें पैपेन एंजाइम और फाइबर होता है जो पाचन क्रिया में मदद करता है। इसके साथ ही इसमें विटामिन C, A, फोलेट, मैग्नीशियम, पोटैशियम और एंटीऑक्सीडेंट्स भी पाए जाते हैं जो इसे एक संपूर्ण पोषण पैक बनाते हैं।

पपीता खाने का सही तरीका

सुबह खाली पेट खाना सबसे ज्यादा फायदेमंद माना जाता है।

रात में खाना भी सुरक्षित है लेकिन मात्रा नियंत्रित रखें।

रोजाना 100–150 ग्राम पका हुआ पपीता पर्याप्त होता है।

पपीते के फायदे

1. पाचन को सुधारे
2. डायबिटीज में फायदेमंद
3. वजन घटाने में मदद
4. त्वचा और बालों के लिए फायदेमंद
5. रोग प्रतिरोधक क्षमता और दिल की सेहत
6. आंखों के लिए फायदेमंद
7. कैंसर और सूजन से सुरक्षा

पपीते के अन्य हिस्सों के फायदे

पपीते के पत्ते

डेंगू में प्लेटलेट्स बढ़ाने के लिए पत्तों का रस असरदार माना जाता है।

पपीते के बीज

बीजों में कमजव गुण होते हैं जो लीवर और पाचन को साफ करते हैं।

पपीते का दूध

त्वचा पर लगाने से डेड स्किन हटती है और स्किन टोन बेहतर होती है।

कब नहीं खाना चाहिए पपीता?

गर्भवती महिलाएँ कच्चा पपीता न खाएँ, इसमें लेटेक्स होता है जो गर्भपात का कारण बन सकता है।

निष्कर्ष

पपीता सिर्फ एक फल नहीं, एक नेचुरल हेल्थ बूस्टर है। इसमें पोषण, रोग–प्रतिरोधक गुण, त्वचा और वजन सुधारने की शक्ति है। इसे रोजाना अपने आहार में शामिल करें और फर्क महसूस करें।

आर्यसमाज, रेलवे रोड, अम्बाला शहर में ऋषि बोधोत्सव

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, हरियाणा के तत्वावधान में आर्य समाज, रेलवे रोड, अम्बाला शहर द्वारा स्वामी दयानंद सरस्वती के जन्मोत्सव एवं बोधोत्सव को श्रद्धा एवं भक्ति के साथ मनाया गया। यज्ञ के साथ ही प्रवचन, भक्ति पूर्ण भजन तथा बच्चों द्वारा स्वामी जी पर एक रंगारंग कार्यक्रम की प्रस्तुति दी गई।

मुख्य अतिथि डॉ. रमेश चन्द्र जीवन, पूर्व प्राचार्य ने अपने वक्तव्य में कहा कि आज हम उस महान ऋषि का स्मरण कर रहे हैं, जिन्होंने अज्ञान, अंधविश्वास और कुरीतियों के अंधकार में डूबे समाज को वेदों का प्रकाश प्रदान किया। उन्होंने बताया कि हमे विद्या को ग्रहण करना चाहिए और अविद्या का त्याग करना चाहिए। हमें अंधविश्वासों से दूर रह कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

मुख्य वक्ता आचार्य वेदव्रत ने कहा कि धर्म सुखी जीवन का मूल मन्त्र है और अधर्म दुःख का कारण है। स्वामी जी ने वेदों के महत्व पर बल दिया। उन्होंने आयुर्वेद के अनुसार आचरण करने का आहवान किया।

आर्य समाज के मंत्री डॉ विकास कोहली ने बताया कि महर्षि दयानन्द का व्यक्तित्व सबसे अलग था। स्वामी दयानंद सरस्वती धर्म सुधारक ही नहीं समाज सुधारक और सच्चे राष्ट्रवादी भी थे। उनके भीतर सभी सद्गुणों का मिश्रण था। इस कार्यक्रम में अम्बाला के विभिन्न आर्य समाजों व स्कूल, कॉलेजों से लगभग 300 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

डी.ए.वी. महाविद्यालय कोटखाई में 'पारितोषिक वितरण'

डी.ए.वी. महाविद्यालय कोटखाई में वार्षिक पारितोषिक वितरण समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें बतौर मुख्यातिथि डॉ. रमेश चौहान, पूर्व निदेशक, शारिरिक शिक्षा एवं युवा कार्यक्रम, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय रहे। कार्यक्रम की शुरूआत दीप प्रज्ज्वलन से की गई। श्री राजभद्र चौहान द्वारा मुख्यातिथि का परिचय दिया गया। तत्पश्चात् अपने अनुभवों को साझा करते हुए बताया कि छात्र कड़ी मेहनत से अपने जीवन को बदलें। छात्रों को नशे से दूर रहे और अपने स्वास्थ्य पर ध्यान दे।

श्रीमती कमला चौहान द्वारा अपने पति स्वर्गीय श्री ए.आर. चौहान की स्मृति "ए.आर. चौहान मैमोरियल छात्रवृति" महाविद्यालय के 6 मेधावी और जरूरतमंद छात्रों को 6500 रुपये प्रति छात्र प्रदान की। ब्रिगेडियर अमरजीत सिंह रंडवाल, दिल्ली द्वारा 6500 रुपये

प्रधानाचार्या तथा विद्यार्थी परिसद् के प्रधान ने मुख्यातिथि का स्वागत किया।

प्राचार्य महोदय ने महाविद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत की। जिसमें वर्ष भर की गई गतिविधियों की जानकारी दी। की दो छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गई।

छात्राओं ने नृत्य से भारत के सभी राज्यों की छवी दर्शायी।

डॉ. जोगिन्द्र सिंह दुल्टा ने धन्यवाद प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

डी.ए.वी. ऐरोली (मुम्बई) में ऋषि दयानंद जयंती पर ऋषि-लंगर

महर्षि दयानंद सरस्वती की 202वीं जयंती के उपलक्ष्य में डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, ऐरोली द्वारा एक भावपूर्ण हवन एवं ऋषि लंगर का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की शुरुआत प्रधानाचार्या सुमन प्रधान जी, सभी शिक्षकों एवं विद्यार्थियों द्वारा हवन से की गई।

प्रधानाचार्या ने बताया यह महर्षि दयानंद सरस्वती जी के विचारों का अनुसरण करते हुए ऋषियों की परंपरा के अनुसार चलने वाला सामूहिक भोजन है। इसका आयोजन हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को बढ़ावा से किया गया है।

यह आयोजन सामुदायिक जीवन, आत्मनिर्भरता और अन्न के सम्मान के महत्त्व को रेखांकित करता है। यह कोई साधारण 'भंडारा' नहीं, बल्कि एक वैदिक–सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें सभी लोग एक पंक्ति में बैठकर बिना जाति, ऊँच–नीच, अमीर–गरीब के भेद के सेवा और समानता के भाव से भोजन करते हैं। महर्षि दयानंद ने ऋषि लंगर पर विशेष जोर दिया था।

विद्यालय के विद्यार्थियों दवारा एकत्रित खादय साम्रगी से तैयार प्रसाद (खिचड़ी) को 'संजीवन दीप पैराप्लेंजिक

देने तथा विद्यार्थियों में सादगी, सहयोग, साझेदारी और भोजन के प्रति सम्मान जैसे मूल्यों का विकास करने के उद्देश्य संस्था' के विद्यार्थियों में प्रधानाचार्या एवं शिक्षकों दवारा वितरित किया गया।

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2026

एमसीएम डीएवी कॉलेज कांगड़ा में वार्षिक पारितोषिक वितरण एवं स्वर्ण जयंती वर्ष का भव्य आयोजन

एमसीएम डीएवी कॉलेज, कांगड़ा में वार्षिक पारितोषिक वितरण समारोह तथा स्वर्ण जयंती उत्सव मनाया गया।

कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में श्री आर.एस. बाली, विधायक एवं अध्यक्ष पर्यटन विभाग हिमाचल प्रदेश उपस्थित रहे। विशिष्ट अतिथि के रूप में प्रो. महावीर सिंह, कुलपति, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, डॉ. अमरजीत के. शर्मा, निदेशक, उच्च शिक्षा, तथा श्री अजय वर्मा उपस्थित रहे। प्राचार्य डॉ. बलजीत सिंह पटियाल ने कॉलेज की वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत की। जिसमें कॉलेज की शैक्षणिक, सांस्कृतिक, खेलकूद में प्राप्त सफलताओं का विवरण दिया।

प्रि. पटियाल ने कॉलेज की पचास वर्षों की गौरवपूर्ण यात्रा का उल्लेख किया।

मेधावी छात्रों तथा सांस्कृतिक और खेल गतिविधियों में उपलब्धियाँ प्राप्त करने वाले खिलाड़ियों तथा कलाकार छात्रों को पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया गया।

"Golden Footprints: 50 Years of MCM DAV College Kangra" नाम से स्मारिका विमोचन किया गया। कॉलेज पत्रिका "सुगंधि" का भी विमोचन किया गया।

मुख्य अतिथि आर. एस. बाली ने कॉलेज को पचास वर्ष पूरे होने पर बधाई दी और क्षेत्र में उच्च शिक्षा के विकास में संस्थान के योगदान की सराहना की।

प्रो. महावीर सिंह ने समाज की बौद्धिक और नैतिक नींव को मजबूत बनाने में एमसीएम डीएवी कॉलेज महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया। उन्होंने कॉलेज की निरंतर शैक्षणिक उपलब्धियों की सराहना की और छात्रों को जिज्ञासा, मेहनत और ईमानदारी के साथ ज्ञान अर्जित करने के लिए प्रेरित किया।

उच्च शिक्षा निदेशक डॉ. अमरजीत के. शर्मा ने भी कॉलेज को स्वर्ण जयंती वर्ष के अवसर पर बधाई दी और हिमाचल प्रदेश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कॉलेज के योगदान की प्रशंसा की।

उन्होंने विद्यार्थियों से निरंतर सीखने और नवाचार की भावना को अपनाने का आग्रह किया।

कार्यक्रम का समापन धन्यवाद प्रस्ताव के साथ हुआ।

बी बी के डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन अमृतसर में विशेष व्याख्यान

बी.के. डी ए वी कॉलेज फॉर विमेन अमृतसर की आर्य युवती सभा द्वारा महान स्वामी श्रद्धानंद सरस्वती जी की

पावन जयंती के उपलक्ष्य में एक विशेष व्याख्यान का आयोजन किया गया। मुख्य वक्ता पद्मश्री डॉ. हरमहेन्द्र सिंह बेदी, कुलाधिपति, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश रहे।

प्राचार्या डॉ पुष्पिंदर वालिया ने मुख्य अतिथि का स्वागत किया।

डॉ हरमहेन्द्र सिंह बेदी जी ने अपने वक्तव्य में स्वामी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि स्वामी श्रद्धानंद जी का जीवन त्याग, साहस और राष्ट्रनिष्ठा का अनुपम उदाहरण है। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रजागरण, शिक्षाप्रसार तथा सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए समर्पित कर दिया। गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना कर भारतीय संस्कृति एवं वैदिक परंपरा के पुनर्जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वर्तमान में संचालित नई शिक्षा नीति का उत्स स्वामी श्रद्धानंद जी की विद्या पद्धति में निहित है।

प्राचार्या ने कहा कि ऐसे महापुरूषों की जयंती केवल स्मरण का नहीं, बल्कि उनके आदर्शों को जीवन में उतारने का का अवसर है।

धन्यवाद ज्ञापन से आयोजन सम्पन्न हुआ।

डी.ए.वी. समस्तीपुर (बिहार) में शुभकामना यज्ञ

आर्य युवा समाज के तत्वाधान में वर्ग 12वीं के बच्चों के लिए विशेष हवन यज्ञ एवं गायत्री महायज्ञ का आयोजन किया गया।

विद्यालय प्राचार्य–सह क्षेत्रीय अधिकारी एवं प्रधान आर्य युवा समाज,

बिहार, श्री नीरज कुमार सिंह के दिशा–निर्देश में धर्माचार्य शास्त्री जी के द्वारा विशेष हवन–यज्ञ कार्यक्रम का आयोजन किया गया। हवन–यज्ञ के पश्चात् उन्होंने बताया कि 12वीं के बच्चों का बोर्ड परीक्षा होने वाली है। परीक्षा की तैयारी अच्छे प्रकार से करें। आत्म विश्वास एवं लगन से किया गया कार्य सफलता के शिखर पर पहुँचाता है।

इस कार्यक्रम के अवसर पर विद्यालय के वरिष्ठ शिक्षकों द्वारा छात्र–छात्राओं को सफल होने हेतु आर्शीवाद प्रदान किया गया। कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु विद्यालय के अध्यापकों एवं सभी छात्र–छात्राओं का विशेष योगदान रहा।

कार्यक्रम का समापन शास्त्री जी के द्वारा शांति पाठ एवं प्रसाद वितरण करवा कर किया गया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**